चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की नौवीं कांग्रेस

शिवदास घोष

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की नौवीं कांग्रेस

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीसी) की नौवीं कांग्रेस में लिन बियाओ द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट व संविधान ने सैद्धांतिक असंगतियों को उजागर किया था। उस वक्त उपलब्ध थोड़े से तथ्यों का संभाव्यता के तर्क-विज्ञान की रोशनी में अध्ययन करके कॉमरेड घोष ने यह सूक्ष्म विश्लेषण किया था। बाद की घटनाओं ने उनके इस मूल्यांकन की पुष्टि की।

कॉमरेड्स,

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की नौवीं कांग्रेस में लिन बियाओ द्वारा प्रस्तुत एवं कांग्रेस द्वारा पारित रिपोर्ट व संविधान के बारे में बहुत सारे प्रश्न उठाये गये हैं। मैं उनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण सवालों पर ही चर्चा करूंगा। हालांकि कुछ अन्य खास मुद्दे भी मौजूद हैं और यद्यपि उन पर कोई भी सवाल नहीं पूछे गये हैं, उन पर भी चर्चा की जरूरत है। और उन पर भी उचित समय पर चर्चा करूंगा। कहने की जरूरत नहीं, केन्द्रीय कमेटी में जो हमने चर्चा की है, उस चर्चा की रोशनी में ही मैं इन सब पर चर्चा करूंगा।

नौवीं कांग्रेस की इस रिपोर्ट का अध्ययन करके हम सचमुच ही चकित रह गये। यहां-वहां कुछ थोड़ी सही बातों के सिवाय, समूची रिपोर्ट घोर सैद्धांतिक असंगतियों से भरी पड़ी है। उदाहरणस्वरूप पहले एक ही सवाल पर इसमें अलग-अलग जगहों पर स्वविरोधी बातें कही गयी हैं और तर्क-युक्तियों व तथ्यों द्वारा समर्थित एक निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कोई प्रयास नहीं किये गये हैं। इसके अलावा सैद्धांतिक चर्चाओं में भी बहुत-सी त्रुटिपूर्ण अभिव्यक्तियां हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि कुछ संदर्भों में बेतुके (wild) दावे किये गये हैं जिनका कोई वास्तविक आधार नहीं है और जिनके समर्थन में कोई तथ्य भी पेश नहीं किये गये

हैं। मैं एक चीज के बारे में ही वस्तुतः चिंतित हूं। ऐसी एक गौरवशाली सांस्कृतिक क्रांति–संक्षेप में एक शानदार घटना–के बाद यह उम्मीद की जाती थी कि वे चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की एक कांग्रेस आयोजित करेंगे और ऐसा मैंने 'चीन की सांस्कृतिक क्रांति' पर अपनी चर्चा में पहले ही कहा था। बहुत से जटिल मुद्दों पर स्पष्टीकरण की इस कांग्रेस से मैंने बहुत कुछ उम्मीद की थी। स्वाभाविक तौर पर विश्व भर के कम्युनिस्ट हलकों को बड़ी आशा थी। मगर इस नौवीं कांग्रेस ने न सिर्फ उस उम्मीद पर पानी फेर दिया, बल्कि जैसा कि इस रिपोर्ट में प्रतिबिम्बित है, उसका सैद्धांतिक मानदण्ड भी अवश्य ही गंभीर आशंकाएं पैदा कर रहा है।

स्व-विरोधी वक्तव्य

सोवियत राज्य और सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के चरित्र पर इस रिपोर्ट में टिप्पणियों के उल्लेख से चर्चा शुरू करना मेरे लिए बेहतर होगा। हम उनके इस विचार से कतई सहमत नहीं हो सकते कि संशोधनवादी नेतृत्व द्वारा संचालित सोवियत राज्य ''बुर्जुआ वर्ग के अधिनायकत्व के घोर फासिस्ट राज्य'' में पतित हो चुका है। फिर भी, मुझे जो बात सबसे ज्यादा खटकती है वह यह कि इतने बड़े एक महत्वपूर्ण सवाल पर भी, जिसका अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन से गहरा संबंध है, उन्होंने इसी रिपोर्ट में तीन जगहों पर तीन अलग-अलग टिप्पणियां की हैं। ऐसे एक महत्वपूर्ण दस्तावेज में यह कैसे हो सका?

विश्व में चार प्रमुख (major) द्वन्द्वों पर चर्चा करते वक्त उन्होंने जो कहा उसका अर्थ यह दावा करना है कि सोवियत राज्य अब और समाजवादी राज्य नहीं रह गया वह एक सामाजिक साम्राज्यवादी राज्य (social imperialist state) में पतित हो चुका है और इसी वजह से उन्होंने सोवियत संघ और साम्राज्यवादी देशों के बीच द्वन्द्व को साम्राज्यवादी देशों के बीच द्वन्द्व की श्रेणी में रखा है। लेकिन जहां उन्होंने सोवियत संघ की अन्दरूनी परिस्थिति का विश्लेषण किया है, वहां वे इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने में समर्थ नहीं हुए हैं कि सोवियत राज्य पहले ही एक पूंजीवादी राज्य

बन चुका है। बल्कि उन्होंने कहा है कि सोवियत राज्य पूंजीवाद की पुनर्स्थापना की ओर अग्रसर होता जा रहा है। इसके अतिरिक्त एक दूसरे संदर्भ में उन्होंने यह कहते हुए माओ त्से-तुंग के उद्धरण को पेश किया है कि सोवियत संघ की विशाल जनता और सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य अच्छे हैं और कम्युनिस्ट हैं तथा क्रांति चाहते हैं, वे ज्यादा दिनों तक इस संशोधनवादी नेतृत्व को कतई बर्दाश्त नहीं करेंगे। जहां विचारणीय विषय है कि सोवियत राजसत्ता व सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी का चरित्र क्या है, वहां इन तीन अलग तरह की टिप्पणियों से वे वास्तव में क्या कहना चाहते हैं, इसे समझने के लिए क्या कोई स्पष्ट विचार हमें मिलता है, जो उनका इन सबसे अभिप्राय है? यह कैसे हुआ कि उन्होंने एक इतने महत्वपूर्ण सवाल पर इतनी जबरदस्त सैद्धांतिक असंगतियों को आने दिया? उस हालत में क्या पार्टी के कॉमरेडों व सामान्य रूप से आम लोगों को सही रास्ता दिखाना संभव होगा? यह सब हमें बहुत बेचैन कर रहा है।

सबसे पहले मैं, लेनिन-स्तालिन द्वारा प्रतिपादित ''साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रांति के युग में'', में खास कर रूसी क्रांति के बाद, चार प्रमुख द्वन्द्वों की आप को याद दिलाना चाहूंगा :

एक–साम्राज्यवादी देशों के बीच द्वन्द्व;

दो–उपनिवेशों व साम्राज्यवादी देशों के बीच द्वन्द्व;

तीन–पूंजीवादी-साम्राज्यवादी देशों में श्रम व पूंजी के बीच द्वन्द्व; और

चार–साम्राज्यवाद व समाजवाद-इन दो व्यवस्थाओं के बीच द्वन्द्व।

मगर लिन बियाओ की रिपोर्ट में चार प्रमुख द्वन्द्वों को निम्नलिखित रूप में वर्णित किया गया है : ''(1) एक ओर उत्पीड़ित राष्ट्रों और दूसरी ओर साम्राज्यवाद व सामाजिक साम्राज्यवाद के बीच द्वन्द्व; (2) पूंजीवादी व संशोधनवादी देशों में सर्वहारा व बुर्जुआ वर्ग के बीच द्वन्द्व; (3) साम्राज्यवादी व सामाजिक साम्राज्यवादी देशों के बीच तथा साम्राज्यवादी देशों के बीच द्वन्द्व; और (4) एक ओर समाजवादी देशों और दूसरी ओर स्रामाज्यवाद व सामाजिक साम्राज्यवाद के बीच द्वन्द्व।''

इस रिपोर्ट में जिस तरीके से इन चार अन्तर्राष्ट्रीय मुख्य (Principal) द्वन्द्वों को वर्णित किया गया है, उससे स्पष्ट रूप में दो बातें उभर कर सामने आती हैं। पहली, बहुत अरसा पहली लेनिन व स्तालिन ने जिन द्वन्द्वों को प्रतिपादित किया था, इस नौवीं कांग्रेस ने उनके अलावा कोई नया प्रमुख या मुख्य (major or principal) द्वन्द्व सूत्रित नहीं किया है। अर्थात वे इस संबंध में लेनिन या स्तालिन के निरुपण (formulation) के आगे नहीं जा सके, सिवाय सोवियत राज्य को एक सामाजिक साम्राज्यवादी राज्य के रूप में चिह्नित करने के।

दूसरी, यह अर्थ निकाला गया है कि सोवियत राज्य अब समाजवादी राज्य नहीं रह गया है; वह एक सामाजिक साम्राज्यवादी राज्य में पतित हो चुका है। उन्होंने यह नहीं कहा है कि सोवियत नेतृत्व द्वारा संशोधनवादी और एक बहुत ही खतरनाक लाइन का अनुसरण करने के बावजूद, सोवियत संघ का साम्राज्यवाद के साथ द्वन्द्व अभी साम्राज्यवाद व समाजवाद के बीच द्वन्द्व की श्रेणी में ही आता है। इसके विपरीत उन्होंने सोवियत संघ व साम्राज्यवाद के बीच द्वन्द्व को साम्राज्यवादी देशों के बीच द्वन्द्व के रूप में स्पष्ट तौर पर परिभाषित किया है।

मगर नोट करें कि इसी रिपोर्ट में वे क्या कहते हैं, जहां उन्होंने आक्षेप लगाया है कि सोवियत कम्युनिस्ट नेतागण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्दरूनी पार्टी संबंधों के मामलों में वृहत् शक्ति सुलभ मनोभाव (a big brotherly attitude) दिखाते हैं, और दूसरों को दबाकर अधीन रखना चाहते हैं। ख्रुश्चेव से ब्रेझनेव एण्ड कम्पनी तक, सभी सत्ताधारी व्यक्ति पूंजीवादी रास्ते पर चलते आ रहे हैं, जिन्होंने सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी में अपने-आप को लम्बे अरसे तक छिपाए रखा था। ज्यों ही वे सत्ता में आये, उन्होंने बुर्जुआ वर्ग की **'पुनर्स्थापना की आशा-आकांक्षा'** को **'पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के प्रयासों'** में बदल डाला" और "...सोवियत संशोधनवादी वर्गद्रोही षड्ययंत्रकारी गुट हमेशा ही पहले की अपेक्षा सामाजिक साम्राज्यवाद व सामाजिक फासीवाद का उग्रतापूर्वक व्यवहार करता आ रहा है। अन्दरूनी तौर पर उसने सोवियत लोगों

के ऊपर दमन-उत्पीड़न को तीव्र कर दिया है तथा पूंजीवाद की चौतरफा पुनर्स्थापना की **गति तेज कर दी है**'' आदि, आदि। (जोर हमारा)

पूंजीवाद की पुनर्स्थापना की चेष्टा या पूंजीवाद पुनर्स्थापित हो चुका है

जो उनका अभिप्राय है वह इन दो उद्धरणों से स्पष्ट हो जायेगा कि सोवियत संघ में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के प्रयास चालू हैं, संशोधनवादी नेता पुनर्स्थापना की प्रक्रिया को तेज कर रहे हैं, बस इतना ही। इस कथन द्वारा वे साफ तौर पर एक प्रक्रिया का हवाला देते हैं। लेकिन जैसा कि हम सभी समझते हैं कि 'पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के प्रयासों' तथा 'पूंजीवाद के पूरी तरह पुनर्स्थापित कर दिये जाने के बीच' जमीन-आसमान का फर्क है। वहां बहुत से भटकाव हो चुके हैं कहने का अर्थ यह नहीं होता कि कोई चीज स्वत: अपनी विपरीत सत्ता में रूपान्तरित हो चुकी है। उदाहरण के लिए, एक मजदूर वर्ग की पार्टी कभी-कभी कुछ भटकाओं का शिकार हो सकती है। क्या इसका अर्थ यह है कि ज्योंही उसमें भटकाव शुरू हुआ, त्यों ही वह पार्टी एक गैर-मजदूर वर्ग की पार्टी में परिणत हो गयी? यह साबित करने हेतु कि वह परिणत हो गयी है, हर किसी के लिए कारण दिखाना जरूरी है अर्थात उस व्यक्ति के लिए तमाम प्रासंगिक राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पक्षों को संयोजित करके सिद्ध करना जरूरी है कि समूचे रूप में पार्टी एक गैर-मजदूर वर्ग की पार्टी में परिणत की जा चुकी है, अर्थात पार्टी का सांगठनिक ढांचा और जीवन पतित हो गया है, तथा यह पार्टी द्वारा सिर्फ एक संशोधनवादी लाइन अनुसरण करने का मामला नहीं है। इसी प्रकार हर किसी को वे आधार अवश्य ही विशेष रूप से उल्लेख करने चाहिए जिन पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि सोवियत राज्य अब समाजवादी राज्य नहीं है, वह एक सामाजिक फासिस्ट राज्य में परिणत हो गया है एवं समूची आर्थिक व्यवस्था एक राष्ट्रीय फासिस्ट अर्थव्यवस्था हो गयी है। लेकिन उन्होंने इसके समर्थन में कोई सबूत नहीं दिया है।

अत: जैसा कि हम पाते हैं कि चार प्रमुख विश्व द्वन्द्वों पर चर्चा करते हुए, वे इसी रिपोर्ट में और एक जगह में यह कह बैठे हैं कि सोवियत राज्य एक सामाजिक साम्राज्यवादी देश में तब्दील हो गया है और उसी रिपोर्ट में एक अन्य जगह पर उन्होंने कहा है कि संशोधनवादी नेतृत्व वहां पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के प्रयास कर रहा है। लेकिन किसी पूंजीवादी या साम्राज्यवादी देश की व्याख्या करते वक्त, क्या कोई व्यक्ति कहेगा कि वहां कुछ ऐसे लोग हैं जो देश को पूंजीवाद की ओर ले जाने का प्रयास कर रहे हैं। फासिस्ट राज्य में परिणत हिटलर के जर्मनी अथवा किसी पूंजीवादी देश के बारे में क्या यह कहा जा सकता है कि वहां पूंजीवाद की पुनर्स्थापना का प्रयास किया जा रहा है? कैसे एक इतने महत्वपूर्ण दस्तावेज में सोवियत संघ पर सामाजिक साम्राज्यवादी होने का ठप्पा लगाया जाता है और दूसरी तरफ वहां पूंजीवाद की पुनर्स्थापना का प्रयास किया जा रहा है–ऐसा कहा जा सकता है? एक ऐसे दस्तावेज में इतनी भारी असंगति कैसे हो सकती है? विश्व भर के कम्युनिस्टों का वैचारिक मान चाहे जितना भी निम्न क्यों न हो और कम्युनिस्ट आन्दोलन में वैचारिक संकट चाहे जितना भी गंभीर क्यों न हो, अभी भी ऐसे कम्युनिस्टों की संख्या कम नहीं है, जो ऐसी बेतुकी बातों को मान लेने से इनकार कर देंगे।

देखिए, इस रिपोर्ट में माओ त्से-तुंग का एक उद्धरण किस तरह उल्लिखित है : ''सोवियत संघ पहला समाजवादी राज्य था और सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी का सृजन लेनिन ने किया था। हालांकि सोवियत पार्टी और राज्य का नेतृत्व अब संशोधनवादियों ने हड़प लिया है, फिर भी मैं कॉमरेडों को कम्युनिज्म में दृढ़ आस्था के साथ अडिग रहने की नसीहत देता हूं क्योंकि सोवियत जन समूह और पार्टी सदस्य एवं कैडर सभी अच्छे एवं लायक हैं और वे क्रांति चाहते हैं और संशोधनवादी शासन ज्यादा समय तक टिक नहीं पायेगा।'' जबकि मूल आलोच्य विषय यह है कि सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी व सोवियत राज्य के प्रति हमारा विश्लेषण एवं नजरिया (attitude) क्या हो एवं बुनियादी सवाल यह है कि जिन सब भटकाओं की बात हम सोचते हैं, जिनसे वे ग्रस्त हो चुके

हैं–क्या वे भटकाव इतने महत्वपूर्ण हैं कि इनको अब और आगे कम्युनिस्ट पार्टी व समाजवादी राज्य कहा ही नहीं जा सकता, इस रिपोर्ट में लिन बियाओ द्वारा पेश किये गये इन उद्धरणों में समस्याओं को छुआ तक नहीं गया है, बल्कि इस मूल सवाल से कन्नी काटी गयी है। माओ त्से-तुंग का यह उद्धरण न सिर्फ अपर्याप्त है, बल्कि अप्रासंगिक भी है। क्या कॉमरेडों को यह याद रखने के लिए नसीहत कि ''सोवियत जन-समूह और पार्टी-सदस्य व कैडर अच्छे लायक व नेक हैं और वे क्रांति चाहते हैं''–इस बुनियादी सवाल का उत्तर देती है कि क्या सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी अभी भी एक कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत राज्य अभी भी एक समाजवादी राज्य है कि नहीं? गलतफहमी को दूर करने में क्या यह उद्धरण जरा भी मदद करता है? या क्या उल्टे यह समूचे मामले को और भी ज्यादा गड्डमड्ड करने एवं उलझाने में योगदान नहीं करता है? और ऐसी रिपोर्ट को ''पथ आलोकित करने वाले'' दस्तावेज होने का दावा किया गया है! यह किस तरह के मानदण्ड को प्रतिबिम्बित करता है? उनके दावे के ठीक या गलत होने की बात तो दूर, सिर्फ उस सैद्धांतिक मानदण्ड के बारे में ही सोचिए जो वे प्रतिबिम्बित करते हैं। न सिर्फ नौवीं कांग्रेस के प्रतिनिधियों, बल्कि केन्द्रीय कमेटी व स्थायी कमेटी के सदस्यों, लिन बियाओ एवं अन्य तमाम नेताओं द्वारा यह उत्तर देने की जिम्मेदारी है कि ऐसे महत्वपूर्ण दस्तावेज में ऐसी विचित्र चीजें कैसे शामिल हो सकीं। वे इस जिम्मेदारी से हरगिज मुकर नहीं सकते हैं।

एक चीज के बारे में तो मैं सचमुच ही चिंतित हूं। यह बात इतनी महत्वपूर्ण नहीं है कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी उस सांस्कृतिक क्रांति के माध्यम से, जिसका मैंने शानदार कहकर अभिनन्दन किया था, उन लोगों को अलग-थलग करने और पहचानने में सक्षम हुई है या नहीं जिन पर उन्होंने पूंजीवादी रास्ते पर चलने का आरोप लगाया था? जो सोवियत संशोधनवाद के एजेन्ट के रूप में अन्दर से चीनी राज्य व अर्थव्यवस्था को कथित तौर पर भीतरघात (sabotage) कर रहे थे। मैं तो वस्तुतः इस बात के बारे में चिंतित हूं कि यह महान सांस्कृतिक क्रांति अपने फलस्वरूप उस देश के

लोगों सहित पार्टी के नेताओं, संगठनों व आम सदस्यों के सैद्धांतिक व वैचारिक मानदण्ड को ऊपर उठा सकी या नहीं। यही तो सांस्कृतिक क्रांति का मूल उद्देश्य होना चाहिए था, क्योंकि संशोध नवाद के संभावित आविर्भाव के खिलाफ यही तो असली गारंटी है। यही वजह है कि मेरी राय में इस पक्ष पर विशेष रूप से गौर करना व महत्व देना चाहिए था।

अब यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि सोवियत राज्य अब समाजवादी राज्य नहीं है, बल्कि एक पूंजीवादी राज्य में परिणत हो गया है अथवा सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी अब एक कम्युनिस्ट पार्टी नहीं रह गयी है–आप के विश्लेषण का सैद्धांतिक अवलम्बन होना तथा तथ्य एवं आंकड़ों से इसकी पुष्टि करना जरूरी है। पार्टी व राज्य का नेतृत्व संशोधनवादी बन गया–सिर्फ यह कथन ही स्वत: सिद्ध नहीं कर देता कि पार्टी अब और आगे कम्युनिस्ट पार्टी, और न ही राज्य अब और आगे समाजवादी राज्य रह गया है। इस जैसी दलीलों को सबूत के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता। प्रमाणीकरण के नाम पर यह तो अति सरलीकरण है। मान लीजिए कि कल सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में क्रांतिकारी नेतृत्व आ जाये तो क्या वे फौरन कहना शुरू कर देंगे कि पार्टी रातों-रात पुन: एक कम्युनिस्ट पार्टी में रूपान्तरित हो गयी है और राज्य समाजवादी राज्य बन गया है? क्या यह मार्क्सवाद है? मैं नहीं सोचता कि यह समस्या इतनी सरल है। नव-संशोधनवादियों द्वारा नेतृत्व हड़पने के फलस्वरूप, ''सोवियत राज्य अब समाजवादी राज्य नहीं रह गया है''–यह साबित करने के लिए आप को सिद्ध करना होगा, असंदिग्ध रूप से प्रमाणित करना होगा कि सोवियत संघ में आर्थिक व्यवस्था, उत्पादन संबंध व उत्पादन के उद्देश्य (motive force) में आमूल परिवर्तन हो गया है और यह कि समाजवादी उत्पादन संबंध व उत्पादन के उद्देश्य की जगह पूंजीवादी उत्पादन संबंध व उत्पादन उद्देश्य पुनर्स्थापित हो गया है। इस प्रकार समूचा आर्थिक आधार ही परिवर्तित हो गया है।

मेरे कहने का आशय यह है कि दावा सिद्ध करने के लिए कुछ रुझानों या कुछ लक्षणों का उल्लेख करना ही काफी नहीं है।

यह दिखाना जरूरी है कि पूंजीवादी उत्पादन संबंध ने प्रधान (dominant) चरित्र ग्रहण कर लिया है अर्थात वह प्रधान उत्पादन संबंध बन गया है। यह समग्र सैद्धांतिक विश्लेषणों द्वारा सिद्ध करना और आकड़ों द्वारा इसकी अनिवार्य पुष्टि करना जरूरी है। जब तक इसमें सम्मिलित तमाम राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व दार्शनिक पक्षों को समन्वित करके व्यापक रूप से इस सवाल पर सोच-विचार न करें और जब तक इसकी सामग्रियों व तथ्यों द्वारा पुष्टि न की जाए, तब तक हमें यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि एक कम्युनिस्ट पार्टी या एक समाजवादी राज्य एक गैर-कम्युनिस्ट पार्टी या एक पूंजीवादी राज्य में परिणत हो गया है। यह बात अलग है कि हमारा इस विषय के बारे में क्या वक्तव्य है, लेकिन जो चीनी कम्युनिस्ट पार्टी कहती है, उस पर निर्भर करके भी हम निर्णायक रूप में यह नहीं कह सकते कि रूस में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना की अब आगे कोई सम्भावना है ही नहीं और न ही यह कह सकते हैं कि वहां पूंजीवाद पुनर्स्थापित हो चुका है। इसका कारण यह है कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी न तो ऐसा कोई सैद्धांतिक विश्लेषण पेश कर सकी और न ही वे तथ्यों द्वारा अपने कथन की पुष्टि असंदिग्ध रूप से कर सके। स्पष्ट रूप में यह दावा करने के सिवाय कि सोवियत राज्य एक सामाजिक साम्राज्यवादी राज्य है—जब उन्होंने प्रमुख विश्व द्वन्द्वों पर चर्चा की, तब उन्होंने किसी भी सैद्धांतिक विश्लेषण या तथ्यात्मक (factual) आकड़ों द्वारा अपने कथन को स्थापित नहीं किया है।

क्रम विकास के माध्यम से कोई बुनियादी परिवर्तन संभव नहीं

बिलकुल उपयुक्त रूप से, एक सवाल उठाया गया है कि अगर तर्क की खातिर मान लिया जाय कि बुर्जुआजी के हाथों सोवियत संघ एक घोर (dark) फासीवादी राज्य में परिणत हो गया है तो, क्या मार्क्सवादियों के लिए यह कहना समुचित एवं सही है कि यह परिवर्तन ''शांतिपूर्ण क्रम-विकास (evolution) के माध्यम से'' घटित हुआ है। क्योंकि लिन बियाओ की रिपोर्ट में कहा गया है कि ''ज्योंही वे (सोवियत संशोधनवादी षड्यंत्रकारी गुट) सत्ता में

आये, ...लेनिन व स्तालिन की पार्टी के नेतृत्व को हड़पा, और 'शांतिमय क्रम-विकास' से सर्वहारा एकनायकत्व के विश्व के प्रथम राज्य को बुर्जुआजी की डिक्टेटरशिप के क्रूर फासिस्ट राज्य में परिणत कर डाला।'' त्योंहि प्रश्न उठता है: फर्ज कीजिए सोवियत संघ में आर्थिक व्यवस्था, उत्पादन संबंध और उत्पादन के उद्देश्य में आमूल-चूल परिवर्तन हो चुका है, जिसकी गैर मौजूदगी में यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि सोवियत राज्य एक पूंजीवादी राज्य में परिवर्तित हो चुका है। अब वहां कोई प्रतिरोध न हो, तो यह परिवर्तन शांतिपूर्ण ढंग से अर्थात सत्ता के रक्तरंजित कब्जे के बगैर भी हो सकता है, लेकिन जब सवाल एक वर्ग के राज्य से दूसरे वर्ग के राज्य में पलटने का है, तो क्या यह परिवर्तन क्रम-विकास (evolution) की प्रक्रिया के माध्यम से हो सकता है? मार्क्सवाद या द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद हमें सिखाता है कि एक परिघटना (phenomenon) या किसी सत्ता (entity) में आमूल-चूल परिवर्तन तभी होता है, जब निरन्तर परिवर्तन के दौरान (in course of) हर क्षण थोड़ा-थोड़ा करके जिसे हम क्रम-विकास या परिमाणगत परिवर्तन कहते हैं, के माध्यम से धारावाहिकता में वह एक विच्छेद-बिन्दु पर पहुंच जाता है और तब एक हठात परिवर्तन या एक विच्छेद (break) या क्रांतिकारी अथवा गुणात्मक परिवर्तन के माध्यम से, वह एक सर्वथा नयी परिघटना या नयी सत्ता में रूपान्तरित हो जाती है। अत: जब वे कहते हैं कि सोवियत राज्य के वर्ग चरित्र में एक आमूल परिवर्तन हो चुका है, कहने का अभिप्राय है कि सर्वहारा एकनायकत्व की जगह बुर्जुआजी का एकनायकत्व कथित रूप से स्थापित हो गया है—क्या यह दावा करना मार्क्सवाद के साथ मेल खाता है कि यह आमूल-चूल परिवर्तन सिर्फ क्रम-विकास या धीरे-धीरे (evolutionary or gradual) परिवर्तन के माध्यम से घटित हुआ है? यदि वे इसे शांतिपूर्ण क्रम-विकास की बजाए शांतिपूर्ण प्रतिक्रांति कहते तो उनके विवादास्पद कथन से संबंधित सवालों के बावजूद कम से कम ऐसी कोई सैद्धांतिक असंगति तो न होती। मार्क्सवाद या द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद हमें सिखाता है कि जब किसी चीज से धीरे-धीरे परितर्वन के दौरान सर्वथा नयी चीज का आविर्भाव

होता है, एक सर्वथा नयी सत्ता अस्तित्व में आती है, तो इस प्रक्रिया में निरन्तरता व विच्छेद (continuity and break) दोनों निहित होते हैं। परिवर्तन की प्रकृति को सही रूप में समझने के लिए हमें इन दोनों पक्षों को अच्छी तरह समझना जरूरी है। जिसे मैं विच्छेद या विच्छेदात्मक बिन्दु (break or nodal point) कह रहा हूं, वह सामाजिक परिवर्तन या राज्य के ढांचे के परिवर्तन के क्षेत्र में एक क्रांति को सूचित करता है जिसके जरिये एक वर्ग का राज्य दूसरे वर्ग के राज्य में आमूल रूप से (radically) रूपान्तरित हो जाता है। अत: एक राज्य से दूसरे राज्य में, एक वर्ग की डिक्टेटरशिप से दूसरे वर्ग की डिक्टेटरशिप में यह आमूल-चूल परिवर्तन, शांतिपूर्ण साधनों के माध्यम से तभी हो सकता है अगर इसका कोई प्रतिरोध न हो, लेकिन यह क्रम-विकास के माध्यम से कभी नहीं हो सकता है। क्योंकि वह एक कम्युनिस्ट पार्टी है, जो वहां शासन चलाती है और क्योंकि वहां सामान्य रूप से लोगों की मजदूर वर्ग, मजदूर वर्ग की पार्टी और उसकी विचारधारा के प्रति निष्ठा की भावना है अत: यदि वे संशोधनवाद का प्रयोग-व्यवहार करते हैं और भीतर से मार्क्सवाद की क्रांतिकारी मर्मवस्तु को अंतत: बर्बाद कर देते हैं, तो एक रोज समूची व्यवस्था ही सड़-गल और प्रदूषित हो सकती है। और इस प्रकार, कोई प्रतिरोध न होने की स्थिति में, समाजवादी राज्य किसी रक्तरंजित प्रतिक्रांति के बगैर पूंजीवादी राज्य में परिणत हो सकता है। चाहे जो हो, अलबत्ता यह कभी भी क्रम-विकास की प्रक्रिया के माध्यम से नहीं हो सकता। अत: यह अवश्य ही स्वीकार करना चाहिए कि 'शांतिपूर्ण क्रम-विकास' एक त्रुटिपूर्ण सैद्धांतिक अभिव्यक्ति है। इस सब की वजह से ही, मैं इस समूचे दस्तावेज को ही त्रुटिपूर्ण सैद्धांतिक अभिव्यक्तियों का एक अजीबो-गरीब विचित्र दस्तावेज या कृति कहने को बाध्य हूं।

इसके अलावा, लिन बियाओ की रिपोर्ट में एक दूसरे संदर्भ में कहा गया है : चेयरमैन माओ ने संशोधनवाद के खिलाफ 'tit for tat' अर्थात ईंट का जवाब पत्थर से देने जैसा संग्राम छेड़ दिया है। मैं आप से इस बिन्दु पर गौर करने करने का अनुरोध करता हूं। नव-संशोधनवाद के खिलाफ छेड़ा गया संग्राम तो एक वैचारिक

संग्राम ही है, चाहे वह कितना ही भीषण, दीर्घ-स्थायी (protracted) एवं सर्वांगीण क्यों न हो। क्या हम इसे ईंट का जवाब पत्थर से देने जैसे संग्राम की संज्ञा दे सकते हैं? अगर हम ऐसा करें, तो जैसा हम चाहते हैं, क्या हम संशोधनवाद के खिलाफ इस संग्राम के चरित्र को सही रूप में पेश कर सकते हैं। इसका कारण यह है कि हमें अवश्य ही याद रखना चाहिए कि हरेक अभिव्यक्ति में एक विशेष अर्थ और एक खास लक्ष्यार्थ (connotation) निहित होता है। एक अभिव्यक्ति विशेष को, काल व संदर्भ का फर्क ध्यान में रखे बगैर, कहीं भी और हर जगह इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। ''जैसे को तैसा संग्राम'' की अभिव्यक्ति को आम तौर पर दो वर्ग शत्रुओं के बीच छेड़े गये संग्राम के संबंध में इस्तेमाल किया जा सकता है। इसका संशोधनवाद के खिलाफ वैचारिक संघर्ष के साथ भला क्या वास्ता है? इस तरह बात को पेश करने में चाहे जितना मानसिक संतोष मिले मगर इससे न सिर्फ भ्रांति में ही इजाफा हो सकता है बल्कि यह विचारों में जटिलताएँ पैदा करती है। और विचारों एवं भावों (ideas) की स्पष्टता को धुंधला बनाती है। मैं समझता हूं कि उनके ऐसा कहने का एक कारण है। विरोधी शक्तियों की एकता के सिद्धांत (principle of unity of opposites) की उनकी समझदारी, जैसा कि लिन बियाओ की रिपोर्ट में प्रतिबिम्बित हुई है, खास कर यह समझदारी कि मजदूर वर्ग-पार्टी भी इस सिद्धांत से संचालित होती है और यह कि मजदूर वर्ग की पार्टी में यह निरंतर क्रियाशील रहती है–ही मुख्य रूप से ''जैसे को तैसा जैसे संघर्ष'' की भ्रांत अभिव्यक्ति के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार है। मैं बाद में अपने विचार की व्याख्या करूंगा कि किस तरीके से विरोधी शक्तियों की एकता के सिद्धांत को समझना चाहिए। अब मैं आप से एक अन्य पहलू पर भी सोचने के लिए अनुरोध करता हूं। मान लो कि हम एक गैर-समाजवादी राज्य की व्यवस्था जो एक साम्राज्यवादी राज्य–नवोदित (resurgent) राष्ट्रवादी राज्य या बुनियादी भटकाव की लम्बी प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए मूलभूत परिवर्तन के फलस्वरूप पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के माध्यम से पूंजीवादी राज्य में पतित एक समाजवादी राज्य भी, अथवा एक

समाजवादी राज्य का मामला हो, जिसमें भटकाव शुरू हो रहा है, मगर अभी पूंजीवादी राज्य में परिवर्तित नहीं हुआ है–तब हमें ऐसे राज्यों की इन विभिन्न किस्मों में हरेक मामले में क्या एक ही दृष्टिकोण (approach) अपनाना चाहिए? क्या हमें, उन्हें एक साथ रखकर एक ही शब्दावली (terms) में, उनका विश्लेषण करना चाहिए? यदि हम हरेक विशेष मामले में द्वन्द्व की विशिष्टता (particularity of contradiction) निर्धारित करने में असफल होते हैं, तो क्या हम उनके बारे में सही विचार (idea) बना सकते हैं? और जब सही धारणा नहीं बन सके, तो क्या संघर्ष को सही रास्ते पर संचालित करना संभव है? यही वजह है कि संशोधनवाद के खिलाफ संघर्ष को ''जैसा को तैसा'' संघर्ष कहकर, विचार-विश्लेषण करने का दृष्टिकोण, न चाहते हुए भी मुख्य संघर्ष के मुद्दे को काफी भ्रमित कर देगा।

अपनी रिपोर्ट में लिन बियाओ ने यह जोर देते हुए लेनिन से कुछ अंश उद्धृत किये हैं कि पूंजीपति वर्ग को उखाड़ फेंक कर समाजवादी क्रांति सफलतापूर्वक सम्पन्न करने तथा सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना के बाद पूंजीपति वर्ग व सर्वहारा के बीच वर्ग-संघर्ष समाप्त नहीं हो जाता; बल्कि पूंजीपति वर्ग की प्रतिरोध शक्ति हालांकि अलग-अलग रूप व आयाम में और भी कई गुना बढ़ जाती है। और उसके बाद एक अन्य जगह पर, लिन बियाओ ने उसी विषय पर माओ त्से-तुंग से एक उद्धरण पेश किया है, जो असल में लेनिन के कथन की पुनरावृत्ति ही है, मगर वह उतना सर्वांगीण नहीं है। माओ के इस उद्धरण का उल्लेख करते हुए लिन बियाओ ने बेतुका (wild) दावा कर दिया है कि मार्क्सवाद के सिद्धांत और व्यवहार के क्षेत्र में यह एक नया योगदान है। यह किस किस्म की नीति-नैतिकता को प्रतिबिम्बित करता है? वह यह भूल जाते हैं कि खुद उन्होंने ही एक अन्य जगह पर इस संबंध में लेनिन की स्पष्ट एवं समग्र शिक्षाओं को उद्धृत किया है। इस सवाल पर लेनिन ने जो कहा है–यदि इस बारे में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के कॉमरेडों व खुद लिन बियाओ की अनभिज्ञता का मामला होता, तो इस बेतुके (wild) दावे के बावजूद इस पर कोई ऐतराज

नहीं होता। तब हम सोच लेते कि लेनिन के विश्लेषण की अनभिज्ञता के कारण, उन्हें माओ का उद्धरण सत्य को प्रतिबिम्बित करने वाला प्रतीत हुआ हो और इसीलिए इसके बारे में अपना दावा जता दिया हो कि यह कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास में एक नयी देन है तथा यह कि माओ त्से-तुंग ने ही सर्वप्रथम इस विषय पर एक मौलिक विश्लेषण पेश किया है। आप में से कुछ कॉमरेड पूछ सकते हैं: यह कैसे मुमकिन है कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेता यह न जाने, जो लेनिन ने बहुत अरसा पहले कहा था, और इस तरह वे किस प्रकार के कम्युनिस्ट हैं? मैं सोचता हूं कि यह दृष्टिकोण गलत है। यह घटित हो सकता है, खासकर उन देशों में जहां के नेताओं को दीर्घ-स्थायी सशस्त्र संग्राम चलाते हुए इतना ज्यादा व्यस्त रहना पड़ा था कि वे किसी दूसरे देश की कम्युनिस्ट ऑथोरिटी के एक मूल्यवान विश्लेषण की जानकारी नहीं रख सके। उस हालत में यह कहना मेरी राय में गलत होगा कि वे अच्छे कम्युनिस्ट नहीं हैं। लेकिन यहां तो मामला ही भिन्न है। चाहे प्रतिनिधियों को पहले से यह पता न हो, मगर लिन बियाओ ने रिपोर्ट में उद्धृत करके उन्हें लेनिन के विश्लेषण की जानकारी से अवगत करा दिया था। अत: यह तो कहा ही नहीं जा सकता कि उन्होंने लेनिन के विश्लेषण की अज्ञानतावश इस संबंध में माओ की मौलिकता (originality) का योगदान कहने का दावा करने की गलती कर डाली। आप को समझाने की सुविधा के लिए, लिन बियाओ द्वारा उद्धृत लेनिन से संबंधित अंशों को पढ़कर सुनाता हूं।

पहला अंश : निम्नलिखित रूप में दर्ज है : ''जो लोग केवल वर्ग संघर्ष को मान्यता देते हैं, वे अभी तक मार्क्सवादी नहीं बने हैं। मार्क्सवादी केवल वही है, जो वर्ग संघर्ष को मानने के साथ सर्वहारा अधिनायकत्व को भी मानता हो।''

दूसरा अंश है : ''...पूंजीवाद से कम्युनिज्म तक संक्रमण का एक पूरा ऐतिहासिक काल विद्यमान रहता है। जब तक यह काल समाप्त नहीं हो जाता तब तक शोषक अनिवार्य रूप से पुनर्स्थापना की आशा लगाए बैठे रहते हैं और इस आशा को साकार करने के लिए पुनर्स्थापना की कोशिश भी करते रहते हैं।''

तीसरा अंश : ''...पूंजीपति वर्ग का प्रतिरोध उखाड़ फेंककर उसका तख्ता पलट दिये जाने के फलस्वरूप (चाहे केवल एक ही देश में क्यों न हो) दस गुना बढ़ जाता है और उसकी मजबूती न केवल अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी की शक्ति और उसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्कों की शक्ति और स्थायित्व में है, बल्कि आदतों की शक्ति और छोटे पैमाने के उत्पादन की शक्ति में भी निहित होती है। दुर्भाग्यवश, क्योंकि छोटे पैमाने का उत्पादन दुनिया में अभी काफी फैला हुआ है, छोटे पैमाने का उत्पादन लगातार प्रतिदिन और हर घण्टे स्वत:स्फूर्त ढंग से और एक व्यापक पैमाने पर पूंजीवाद को और पूंजीपति वर्ग को जन्म देता रहता है।''

चौथा अंश : ''इन सब कारणों से सर्वहारा अधिनायकत्व को लागू करना जरूरी है।''

पांचवा अंश : ''नये बुर्जुआ, हमारे सोवियत संघ के सरकारी कर्मचारियों में से पैदा हो रहे हैं।''

अंतिम अंश : ''साम्राज्यवादी देश जैसा कि वे खुद ही कहते हैं कि सशस्त्र हस्तक्षेप करने यानी सोवियत सत्ता का गला घोंटने का कोई भी मौका हाथ से नहीं जाने देंगे।''

अपनी रिपोर्ट में लिन बियाओ ने इन अंशों को उद्धृत किया है। मैं लेनिन से कुछ और दूसरे एवं अत्यधिक मूल्यवान अंशों की तरफ आपका ध्यान आकर्षित करना जरूरी समझता हूं। लिन बियाओ ने ये बिन्दु विशेष रूप से स्पष्ट करने के लिए पेश नहीं किये हैं, जैसे कि सर्वहारा एकनायकत्व के तहत वर्ग-संघर्ष का रूप-स्वरूप चरित्र क्या होगा? मैं उन्हें उद्धृत करता हूं :

एक, ''समाजवाद का अर्थ वर्गों का खात्मा है। सर्वहारा अधिनायकत्व ने वर्गों को खत्म करने के लिए वह सब किया है, जो वह कर सकता था। लेकिन वर्गों को एक ही झटके में समाप्त नहीं किया जा सकता है।''

दो, ''सर्वहारा अधिनायकत्व के युग में तमाम वर्ग मौजूद रहते हैं और रहेंगे।''

तीन, ''सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत वर्ग संघर्ष अवलुप्त नहीं होता, सिर्फ उसका रूप बदल जाता है।''

चार, ''सत्ता से उखाड़ फेंके गये शोषकों द्वारा, शोषितों के अगुआ दस्ते अर्थात विजयी सर्वहारा के खिलाफ छेड़ा गया वर्ग संघर्ष पहले की अपेक्षा काफी तीव्र एवं भीषण हो गया है। और वह क्रांति के मामले में तब तक दूसरी तरह का हो भी नहीं सकता, जब तक इस अवधारणा का स्थान सुधारवादी चिंतन न ले ले।'' (लेनिन, संकलित रचनाएं खण्ड-30, पृ.114, 115, 117)

पांच, ''वर्गों के खात्मे के लिए एक लम्बा दुरूह व दुर्दान्त वर्ग संघर्ष अनिवार्य है, जो पूंजी की सत्ता को जड़ से उखाड़ फेंकने के बाद, बुर्जुआ राजसत्ता के ध्वंस के *बाद*, सर्वहारा एकनायकत्व की स्थापना के बाद, वर्ग संघर्ष खत्म नहीं होता है, (जैसा कि पुराने समाजवादी व सोशल डेमोक्रेसी के अशिष्ट प्रतिनिधि कल्पना करते हैं) बल्कि केवल उसका रूप ही बदलता है और बहुत से मामलों में तो अधिक विकराल रूप धारण कर लेता है।'' (प्रॉब्लम्स ऑफ लेनिनिज्म पृ. 315 पर स्तालिन द्वारा उद्धृत)

छह, ''सर्वहारा अधिनायकत्व नए रूपों में सर्वहारा वर्ग संघर्ष की निरन्तरता ही है।'' (लेनिन संकलित रचनाएं, खण्ड-30, पृ. 95)

सात, ''डिक्टेटरशिप (सर्वहारा एकनायकत्व-सम्पादक) प्रचण्ड युद्ध की अवस्था है।'' (लेनिन संकलित रचनाएं, खण्ड-32, पृ. 495)

लेनिन की रचनाओं से ऐसे बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं। मैंने सिर्फ चन्द उद्धरणों का ही उल्लेख किया है। जैसा कि मैं पहले कह रहा था। लेकिन लेनिन के ये शब्द उद्धृत करने के बाद, लिन बियाओ ने माओ त्से-तुंग के एक उद्धरण का हवाला दिया जिसे मैं आपको पढ़कर सुनाता हूं।

''सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच का वर्ग संघर्ष, विभिन्न राजनैतिक शक्तियों के बीच का वर्ग संघर्ष तथा विचारधारा के क्षेत्र में सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच का वर्ग संघर्ष अब भी एक दीर्घकालीन व टेढ़-मेढ़ा वर्ग संघर्ष बना रहेगा और यहां तक कि कभी-कभी वह तीक्ष्ण भी हो जायेगा।''

और, ठीक इसके बाद, लिन बियाओ की रिपोर्ट में कहा गया है : ''इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के सिद्धांत व व्यवहार (theory and practice) में **पहली बार** यह बताया गया है कि उत्पादन के साधनों पर मालिकाने का समाजवादी रूपान्तरण मुख्य रूप से पूरा हो जाने के बाद भी वर्ग संघर्ष मौजूद रहेगा और यह कि सर्वहारा वर्ग को चाहिए कि वह क्रांति जारी रखे।'' (बल दिया गया)

इस बात पर मुझे आपत्ति है। मुझे तो समूचा मामला ही बड़ा अनैतिक लगता है। लेनिन के इतने शानदार विश्लेषण का हवाला देने के बाद भी, वे एक ऐसा निरर्थक व बेतुका दावा कर बैठे कि माओ-त्से-तुंग ने ही पहली बार मार्क्सवाद के सिद्धांत व व्यवहार के इतिहास में यह विश्लेषण प्रदान किया है। वह इन्सान कितना अंधा है, चाहे उसकी नीयत व इरादे जो भी हों, जो चाटुकारिता की इस सीमा तक जा सकता है? और वे प्रतिनिधि जिन्होंने इस रिपोर्ट का अध्ययन किया कैसे ऐसे बेतुके दावे को पचा सके? उन्होंने इस बारे में क्यों नहीं सोच-विचार किया कि क्या किसी व्यक्ति को एक नेता की प्रशंसा करने के नाम पर खुशामद करनी पड़ती है? यह तो निर्लज्ज चाटुकारिता है। क्या एक नेता या नेतृत्व को चाटुकारिता द्वारा मजबूती प्रदान की जा सकती है? और वह किस किस्म का इन्सान है जो ऐसी निर्लज्ज चाटुकारिता में लिप्त रहता है? इस सब को देख-सुन कर, एक चीज मुझे परेशान कर रही है, जिसे मैंने केन्द्रीय कमेटी के सामने रखा है और अब आपके सामने रख रहा हूं। वह यह है कि यदि लिन बियाओ माओ त्से-तुंग का उत्तराधिकारी बन जाये और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का नेता बन बैठे व सत्ता ग्रहण कर ले तो मुझे अन्देशा है कि सीपीसी का भविष्य अंधकारमय है। मुझे आश्चर्य है यदि खुद माओ त्से-तुंग ने इस रिपोर्ट को स्वीकृति दी है। मैं 'यदि' शब्द पर इस वजह से बल देता हूं, क्योंकि मैं उनकी बहुत इज्जत करता हूं। जहां तक मैं उन्हें समझता हूं वे इस सबके घोर विरोधी हैं। क्या यह संभव है कि उन्होंने इसका अनुमोदन किया है? मुझे उनकी सूझ-बूझ के बारे में, न सिर्फ पूर्ववर्ती समय की सूझ-बूझ, बल्कि इस समय की सूझ-बूझ

में भी जिसे वे अभी प्रदर्शित कर रहे हैं और मुझे यह बात बहुत ज्यादा अखरती है कि वे इसे कैसे बर्दाश्त कर सके। मैं इसका माओ के बारे में अपनी राय के साथ मेल नहीं बैठा सकता।

सर्वहारा वर्ग अधिनायकत्व के तहत वर्ग संघर्ष

लेनिन से हम क्या सीखते हैं? लेनिन ने सिखाया कि जब एक बार समाजवाद स्थापित हो जाए तो इसका अर्थ वर्गों का खात्मा नहीं होता। सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना से वर्गहीन समाज के आगमन तक के सक्रमण काल के दौरान वर्ग अस्तित्व में रहते हैं, उसी तरह वर्ग संघर्ष भी विद्यमान रहता है। वर्ग संघर्ष लुप्त नहीं होता, बल्कि सिर्फ इसका रूप ही बदलता है—वह जारी रहता है।

इसके अलावा, लेनिन ने यह भी दिखाया कि सत्ता से उखाड़ फेंके गये शोषकों के खिलाफ विजयी सर्वहारा वर्ग द्वारा छेड़ा गया वर्ग-संघर्ष क्रांति से पहले के वर्ग संघर्ष की तुलना में बहुत ज्यादा भीषण, सर्वांगीण और सूक्ष्मतर भी हो जाता है। हमारे सामने ये लेनिनीय शिक्षाएं मौजूद हैं।

सांस्कृतिक क्रांति पर अपनी चर्चा में मैंने कहा था कि सर्वहारा वर्ग अधिनायकत्व की स्थापना के बाद वर्ग-संघर्ष उग्र हो जाता है, और एक मायने में अधिक कठिन हो जाता है। इसका कारण यह है कि तब वर्ग शत्रु बाहर से नहीं, बल्कि भीतर से हमला करता है। इसीलिए मैंने कहा है कि जब दुश्मन का पता हो तो संघर्ष कम कठिन होता है, क्योंकि तब दुश्मन का पता लगाना और उसके विरुद्ध संघर्ष का संचालन करना आसान होता है। लेकिन जब दुश्मन भीतर मौजूद होता है, अचेत अवस्था में हमारे अन्दर घुसपैठ करता है तो संघर्ष और भी ज्यादा कठिन हो जाता है। इस हमले की प्रकृति यह है कि यह भीतर से समूची अर्थव्यवस्था को धीरे-धीरे प्रदूषित करता रहता है। अत: दुश्मन को पहचानना और उसका पता लगाना (detect) तथा उससे लड़ना बहुत कठिन हो जाता है। यही वजह है कि लेनिन ने न सिर्फ यह कहा कि नये हालात के तहत वर्ग संघर्ष अपना रूप बदलता है, बल्कि यह भी दिखाया कि इस अवस्था में वर्ग संघर्ष ज्यादा भयानक हो जाता है। अत: ज्यों ही

पूंजीपति वर्ग (बुर्जुआजी) को राज्य सत्ता से उखाड़ फेंका जाता है, उनके तमाम उद्योगों एवं परिसम्पत्तियों को जब्त कर लिया जाता है तथा उत्पादन के तमाम साधनों का समाजीकरण कर दिया जाता है, त्यों ही न तो वर्ग संघर्ष बन्द हो जाता है, और न ही पूंजीपति वर्ग की प्रतिरोध-क्षमता लुप्त हो जाती है। इसीलिए लेनिन ने समाजवादी पुनर्निर्माण की विशेष परिस्थितियों के तहत सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को वर्ग संघर्ष की निरंतरता के रूप में चित्रित किया। मैं इसमें स्पष्टता के साथ समझाने के लिए यह और जोड़ देता हूं कि यह वर्ग संघर्ष ही समाजवादी रूपान्तरण को अग्रगति प्रदान करता है। मगर कृपया यह मत कहिए कि यह मार्क्सवाद के सिद्धांत व व्यवहार के क्षेत्र में एक नया योगदान है। नहीं, यह कहना उचित नहीं है। लेनिन ने जो कहा, यह बात उसी में निहित है।

इस संबंध में मैं एक बिन्दु पर संक्षेप में कुछ कहना चाहूंगा। सर्वहारा वर्ग अधिनायकत्व के अधीन वर्ग संघर्ष के बारे में स्तालिन ने एक चर्चा के दौरान कहा है कि हम समाजवाद की विजय की दिशा में जितना ज्यादा बढ़ते हैं, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की मुकम्मिल विजय की तरफ जितना ही हम अग्रसर होते हैं; वर्गों की समाप्ति के जितना ही अधिक निकट पहुंचते हैं, वर्ग संघर्ष उतना ही अधिक भीषण, तीव्र, कठिन एवं जटिल होता जाता है। इसकी आलोचना करते हुए ख्रुश्चेव ने टिप्पणी की कि इस शोध प्रस्थापना के द्वारा स्तालिन ने जुल्म-अत्याचार और सत्ता के दुरुपयोग के लिए आधारों की सृष्टि की थी और उसे उचित व सही साबित करने की कोशिश की थी। समझना मुश्किल नहीं है कि ख्रुश्चेव ने सत्ता हड़पने के बाद यह सब केवल स्तालिन को बदनाम करने तथा स्तालिन को अप्रतिष्ठित करने (destalinisation) के अपने प्रोग्राम के एक हिस्से के रूप में ही कहा था और उस समय हमने ख्रुश्चेव के खिलाफ विरोध प्रकट किया था तथा यह दिखाया था कि स्तालिन का विश्लेषण इस मुद्दे पर सही था।

लेकिन दिलचस्प बात यह है कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी जो अब स्वीकार करती है कि समाजवाद की स्थापना के बाद वर्ग संघर्ष ज्यादा तीव्र व भीषण हो जाता है—वास्तव में, चीन की

सांस्कृतिक क्रांति का औचित्य इसी बात पर आधारित है–उसी सीपीसी ने उस समय ख्रुश्चेव के अभिमत (stand) का वस्तुतः समर्थन किया था। 'पीपुल्स डेली' मुख पत्र में एक लेख में उन्होंने विश्लेषण किया था : ''शोषक वर्गों के खात्मे के बाद किसी को भी वर्ग संघर्ष तेज करने पर जोर नहीं देना चाहिए जैसा कि स्तालिन ने किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि समाजवादी जनवाद के स्वस्थ विकास में रुकावट पैदा कर दी गयी है। सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी ने इस संबंध में दृढ़ संकल्प के साथ स्तालिन की गलतियों को सुधारने का सही काम किया।''*

चीन में यह लेख उस समय प्रकाशित हुआ था जब केन्द्रीय कमेटी में निर्विवाद ऑथोरिटी के साथ, माओ चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के कर्णधार थे। लेकिन यह भी सच है कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने तभी अपनी पुरानी गलती सुधार ली थी और ठीक ही ऐसा किया। वे अब लेनिन व स्तालिन की शिक्षाओं को ठोस रूप में अमली तौर पर वास्तव में प्रयोग कर रहे हैं। हालांकि उन्होंने अपनी गलती को तो सुधार लिया है लेकिन उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया है। हम सोचते हैं कि यदि वे गलती को स्वीकार भी कर लेते, तो यह और भी ज्यादा अच्छा होता और कम्युनिस्ट आचरण विधि के अनुरूप होता और वे एक अच्छी मिसाल कायम कर देते। लेकिन लेनिन के बाद अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के अनुभवों से हम पाते हैं कि हमारी पार्टी के सिवाय, की गयी गलतियों को खुले दिल से सरे-आम स्वीकार करने के मानदण्ड का अभाव साफ जाहिर है। यह स्वस्थ लक्षण है कि सीपीसी ने अपनी गलतियों को पहचाना और उन्हें सुधार लिया।

हम नोट करते हैं कि न सिर्फ नौवीं कांग्रेस ने यह प्रस्थापना (proposition) पेश की है, बल्कि जैसा कि आपने देखा है कि पार्टी संविधान में भी एक धारा (clause) शामिल कर दी गयी है कि माओ त्से-तुंग चिंतन इस युग का मार्क्सवाद-लेनिनवाद है।

* एक बार फिर सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के ऐतिहासिक अनुभवों पर 29 दिसम्बर, 1956 को एक पम्पलेट के रूप में प्रकाशित।

यह धारा (clause) निम्नलिखित रूप में दर्ज है: ''चीन की कम्युनिस्ट पार्टी अपने चिंतन के पथ-निर्देशन के सैद्धांतिक आधार के रूप में मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुंग चिंतन को ग्रहण करती है। माओ त्से-तुंग चिंतन इस युग का मार्क्सवाद-लेनिनवाद है, जिसमें साम्राज्यवाद अपने सम्पूर्ण ध्वंस की ओर बढ़ रहा है और समाजवाद विश्वव्यापी जीत की तरफ आगे बढ़ रहा है।''

मैं स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूं कि हम सीपीसी के इस निरुपण से सहमत नहीं हो सके हैं। मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुंग चिंतन के बारे में उल्लेख करना एक चीज है और हमें इस निरूपण को स्वीकार करने में कोई दिक्कत महसूस नहीं हुई। मगर जिस तरीके से उन्होंने माओ त्से-तुंग चिंतन को इस युग के मार्क्सवाद-लेनिनवाद के रूप में चित्रित किया और वर्तमान युग को 'साम्राज्यवाद, युद्ध व सर्वहारा क्रांति के युग' के रूप में, लेनिन के चित्रण को अस्वीकार करते हुए, इस युग को संशोधनवादी ख्रुश्चेववादियों की तरह की भाषा में साम्राज्यवाद के विखराव के नये युग के रूप में वर्णित किया, हम इन निरुपणों को गलत मानते हैं और हम इनसे बिलकुल सहमत नहीं हैं।

जब हम मार्क्सवाद को सीखने और उस पर अमल करने के बारे में बात करते हैं, तो उससे हमारा अभिप्राय मार्क्सवाद के मूलभूत सिद्धांतों (fundamentals) अर्थात मार्क्सवाद की अवधारणा में निहित सिद्धांत (theory) व बुनियादी उसूलों (principles) को लगातार लागू करना, विशेष परिस्थितियों में इनको विशेषीकृत करना, इनका विशदीकरण करना (elaborate) और उस सीमा तक इन्हें समृद्ध करना करना होता है। दूसरे शब्दों में मार्क्सवाद को लगातार प्रयोग-व्यवहार में लाये बिना, विशेषीकृत किये बगैर और उसका विशदीकरण करके और उस सीमा तक उसे समृद्ध एवं विकसित किये बगैर मार्क्सवाद की सही समझदारी हासिल करना असंभव है। क्योंकि कोई व्यक्ति मार्क्सवाद को प्रयोग-व्यवहार में लाते हुए कुछ विशेष द्वन्द्वों के सन्दर्भ में एक विशेष परिस्थिति में मार्क्सवाद को लागू कर रहा होता है, इसलिए उसे इस व्यवहार के दौरान कुछ सीमा तक मार्क्सवाद को विकसित व समृद्ध तो करना ही होगा। यही वजह है

कि हम अपनी पार्टी की शुरुआत से ही, इस शिक्षा का समर्थन कर रहे हैं कि मार्क्सवाद को विशेषीकृत और विकसित किये बगैर, उसकी सही रूप में पक्की समझदारी हासिल नहीं की जा सकती। इसके द्वारा हमने यही समझाना चाहा है कि कोई भी दूसरों की नकल करके या तोते की तरह रट करके मार्क्सवाद को नहीं समझ सकता। इस दृष्टिकोण से इसको मान्यता देनी पड़ेगी कि चीनी क्रांति के दौरान चीन की ठोस परिस्थितियों में सैद्धांतिक स्तर सहित राजनीति, संस्कृति, सामरिक विज्ञान के क्षेत्रों में मार्क्सवाद को लागू करने की प्रक्रिया में माओ त्से-तुंग ने मार्क्सवाद को कुछ हद तक विकसित एवं विशेषीकृत किया और उसी मायने में उसकी समझदारी को समृद्ध किया। यही वजह है कि हमारी पार्टी माओ त्से-तुंग को एक अग्रणी मार्क्सवादी ऑथोरिटी मानती है। लेकिन यह कहना तो गलत है कि माओ त्से-तुंग चिंतन इस युग का मार्क्सवाद-लेनिनवाद है। क्योंकि इसका अर्थ माओ त्से-तुंग चिंतन को माओवाद (Maoism) के रूप में मान्यता देना होगा। जब हम लेनिन के चिंतन को लेनिनवाद के रूप में चित्रित करते हैं तो यह न तो इस वजह से है, क्योंकि मार्क्सवाद को लागू करके लेनिन क्रांति को सफलीभूत करने वाले प्रथम व्यक्ति थे, न ही इसलिए क्योंकि जिन ठोस परिस्थितियों का उन्होंने सामना किया, उन में मार्क्सवाद को लागू करने की प्रक्रिया में उन्होंने कुछ सीमा तक इसे विकसित, विशेषीकृत एवं समृद्ध किया। बल्कि लेनिन का चिंतन लेनिनवाद इसीलिए कहलाता है, क्योंकि यह सिर्फ मार्क्सवाद का विस्तरण एवं विशदीकरण नहीं था, बल्कि उन्होंने मार्क्सवादी ज्ञान-भण्डार में, अर्थशास्त्र, राजनीति व दर्शन आदि के क्षेत्रों में भी मार्क्सवाद के मूलभूत सिद्धांतों (fundamentals) में कुछ नये शोध एवं प्रस्थापनाएं जोड़ी एवं विशेषीकृत कीं। वे शोध एवं प्रस्थपनाएं जो सभी नयी सम्वृद्धियां थीं अर्थात जो मार्क्सवाद की समझदारी या अवधारणाओं में उससे पहले विद्यमान नहीं थीं, जिसको उन्हें मार्क्स व एंगेल्स के बाद की अवधि में, ''साम्राज्यवाद व सर्वहारा क्रांति'' के युग में प्रतिपादित करना पड़ा था।

अतः माओ त्से-तुंग के चिंतन को इस युग के मार्क्सवाद-लेनिनवाद के रूप में परिभाषित करने से पहले उन्हें

बिन्दुवार (point to point) दिखाना चाहिए था कि वे कौन सी प्रस्थापनाएं हैं जो माओ ने मार्क्सवाद के सामान्य ज्ञान भण्डार में, उसके मूलभूत सिद्धांतों में जोड़ी हैं, जो मार्क्सवाद की पूर्ववर्ती समझदारी में मौजूद ही नहीं थी। जब तक चीन की कम्युनिस्ट पार्टी यह स्पष्ट रूप से प्रदर्शित नहीं कर सकती, हमारी राय में माओ त्से-तुंग चिंतन को इस युग के मार्क्सवाद-लेनिनवाद के रूप में पेश करना उचित नहीं है। लिन बियाओ ने माओ के नये योगदान का ऐसा कोई भी उदाहरण नहीं पेश किया है। चीन की नयी जनवादी क्रांति की रणनीति (strategy) की अवधारणा भी स्तालिन ने ही सबसे पहले प्रतिपादित की थी। नयी जनवादी क्रांति की रणनीतिगत लाइन को स्थापित करने के लिए माओ को बार-बार स्तालिन के वक्तव्य का हवाला देना पड़ा था। लेकिन माओ ने नयी जनवादी क्रांति के इस सिद्धांत (theory) को जिस सुबोधगम्यतापूर्वक, खूबसूरती से सर्वाधिक कारगर ढंग से अपनी ही शैली में पेश किया है—वह उनका अपना एक बेजोड़ योगदान है।

माओ चिंतन—इस युग का मार्क्सवाद-लेनिनवाद नहीं

एक और पहलू है, बगैर प्रमाणीकरण के इस तरीके से माओ त्से-तुंग चिंतन को प्रस्तुत करने के दो नुकसानदायक परिणाम हो सकते हैं।

प्रथमतः, किसी आधार के बिना ऐसा प्रस्तुतीकरण एक बेतुका (wild) दावा साबित हुआ है और इस प्रकार एक अग्रणी मार्क्सवादी व्यक्तित्व के रूप में माओ त्से-तुंग की ऑथोरिटी को कुछ हद तक कलंकित करने (denigrate) का काम किया है। दूसरे, इसने अति-उत्साह में (in overzeal) किसी कथन को सही साबित करने के लिए, संदर्भ से काट कर मार्क्सवादी ऑथोरिटियों को उद्धृत करने की आदत को और ज्यादा अवसर प्रदान कर दिया है, जो अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में और हमारे देश में भी लम्बे अरसे से जड़ जमाए हुए है। परिणाम इस तरह का होगा—मान लीजिए कि चारू मजूमदार माओ त्से-तुंग की रचनाओं से कुछ चीज उद्धृत करेंगे और उसी को माओ के चिंतन के रूप में दावा करेंगे, फिर नागी रेड्डी

किसी अन्य चीज को यह विरोध करने के लिए उद्धृत करेंगे कि पूर्व उद्धरण नहीं, बल्कि उसका उद्धरण ही वस्तुतः माओ का चिंतन है। फिर, उसके साथ-साथ यदि सीपीआई(एम) अपने आम कार्यकर्ताओं को बांधे रखने में कठिनाई का सामना करें, तो वे भी माओ के उद्धरणों का एक अन्य पुलिन्दा पेश कर देंगे। यह सिलसिला जारी रहेगा, क्योंकि इस रिपोर्ट में स्पष्ट व्याख्या ही नहीं की गयी है कि सीपीसी का माओ त्से-तुंग चिंतन से खास अभिप्राय क्या है?

क्या माओ के भाषण को प्रसारित न करना सही था

लेकिन, नौवीं कांग्रेस का उद्देश्य क्या था? इस कांग्रेस का मुख्य उद्देश्य यह प्रस्थापना (thesis) स्थापित करना था कि ''माओ त्से-तुंग चिंतन इस युग का मार्क्सवाद-लेनिनवाद है।'' इसे एक अन्य पहलू से देखें कि इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए वे कैसे अग्रसर हुए हैं। यदि आप सूक्ष्म रूप से गौर करेंगे तो आप को पता चलेगा कि उसमें चीन की किसी भी महत्वपूर्ण राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक समस्या का कोई जिक्र तक नहीं किया है। अतः यह एक राजनीतिक रिपोर्ट की बजाए एक रिपोर्ताज (कुछ खबर पेश करने जैसा) ज्यादा है। जब इस कांग्रेस का मुख्य उद्देश्य माओ त्से-तुंग चिंतन को इस युग के मार्क्सवाद-लेनिनवाद के रूप में प्रतिष्ठित करना था, लेकिन यह देखकर हम चकित रह जाते हैं कि माओ के उद्घाटन भाषण को अभी तक उपलब्ध नहीं कराया गया है जब कि वे खुद वहां उपस्थित थे और उन्होंने उद्घाटन भाषण में प्रतिनिधियों को संबोधित किया था। हम भी उस भाषण की एक प्रति हासिल करने में समर्थ नहीं हुए हैं। जबकि लिन बियाओं की रिपोर्ट को पूरे विश्व भर में प्रसारित किया जा चुका है। क्या यह विचित्र बात नहीं है? इससे मुझे बहुत ज्यादा धक्का लगा है, और हम इसके बारे में गंभीरता से सोच-विचार कर रहे हैं। इसकी दो संभावनाएं निहित हैं। एक संभावना तो यह है कि शायद माओ ने बगैर तैयारी के आशु (extempore) भाषण दिया है और उन्होंने जिन मुद्दों पर चर्चा की, बुढ़ापे के कारण शायद उन मुद्दों पर

व्यवस्थित रूप से अपने विचार पेश न कर सके हों, इसीलिए इस धारणा को सम्पादित करने के लिए समय की जरूरत हो और तभी इसे प्रसारित किया जायेगा। इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है।

माओ के नाम की कसम खाने की चालबाजी

एक दूसरी सम्भावना भी है। हम सभी जानते हैं कि न सिर्फ रूस के लोग बल्कि समूची दुनिया के शोषित लोग लेनिन को अत्यधिक श्रद्धा की नजर से देखते हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि वे आज भी अत्यधिक आदर-सम्मान के स्थान पर विराजमान हैं। स्तालिन के मामले में हम पाते हैं कि विश्व के कुछ कम्युनिस्ट ही उन्हें एक ऑथोरिटी के रूप में स्वीकार करते हैं, जबकि बहुत से दूसरों ने उन्हें ऐसी मान्यता नहीं दी है। लेकिन माओ त्से-तुंग के बारे में तो बात ही अलग है। चीन से बाहर के लोग उनके बारे में जो भी सोचते हों लेकिन लेनिन या स्तालिन ने अपने निजी देश में जो प्यार व इज्जत अर्जित की थी, उससे ज्यादा उन्हें अपने निजी देश में हासिल है। जब मुझे चीन की यात्रा करने का मौका मिला, तब मुझे यह विशेष रूप से एहसास हुआ था। अत: मैं सोचता हूं कि ऐसी स्थिति में यदि पार्टी में कोई नेता या ग्रुप माओ के खिलाफ साजिश में लिप्त है तो वह या वे उनका खुले-आम विरोध करके ऐसी साजिश कतई नहीं कर सकते, उन्हें माओ के नाम की दुहाई दे करके, या बार-बार उनकी तारीफ के पुल बांधते हुए ही इसे करना होगा। चीन में स्थिति की वास्तविकता अभी भी ऐसी ही है कि जो लोग माओ को शारीरिक रूप से खत्म करना और उनके चिंतन का नामो-निशान मिटा डालना चाहते हैं, उन्हें माओ के सच्चे अनुयायी होने का दिखावा करना होगा, इसके बारे में अत्यधिक चिंतित होने का बहाना करना होगा कि यदि माओ चिंतन का अनुसरण न किया जाये तो सीपीसी और लोगों का कितना बड़ा नुकसान हो जायेगा। अत: मौके-बे-मौके उन्हें हर सांस में माओ का गुणगान करना ही होगा। इसके सिवाय कोई दूसरा चारा ही नहीं है। किसी को माओ का गुणगान करते हुए देख कर यदि

कोई यह नतीजा निकाले कि यह व्यक्ति तो कभी माओ के खिलाफ जा नहीं सकता, तो वह बहुत बड़ी गलती कर बैठेगा।

वस्तुतः माओ कैद थे

इस बात पर मैं बल देना चाहता हूं कि जब ऐसा प्रतीत हो सकता है कि इस कांग्रेस का उद्देश्य माओ को प्रोजेक्ट करना था, तो वास्तव में स्थिति यह भी हो सकती थी कि माओ वस्तुतः लिन बियाओ षड्यंत्रकारी गुट के हाथों कैद ही हों, उन्हें समस्त क्षमता (power) से ही वस्तुतः वंचित कर दिया गया हो। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं कि उन्हें जेल में डाल दिया गया। मुझे आशंका है कि लिन बियाओ षड्यंत्रकारी गुट ने माओ की पूजा-अर्चना करते हुए भी, पार्टी व राज्य की ऑथोरिटी ही हड़प ली है। इस संभावना को मैं नजरअंदाज नहीं कर सकता, भले ही माओ त्से-तुंग व्यक्तिगत रूप में कांग्रेस में उपस्थित थे, लेकिन वे पार्टी पर अपनी ऑथोरिटी व कमाण्ड से वंचित हो चुके थे। यदि संभाव्यता की तर्क-युक्ति को एक विज्ञान माना जाता है, मुझे शक नहीं कि इसे अवश्य विज्ञान माना जाना चाहिए—तो इसका प्रयोग करते हुए मैं ऐसी संभावित घटना से इनकार नहीं कर सकता। अन्यथा यद्यपि रिपोर्ट में माओ त्से-तुंग चिंतन का इस युग के मार्क्सवाद-लेनिनवाद के रूप में गुणगान किया गया, लेकिन माओ के उद्घाटन भाषण को अभी तक प्रकाशित एवं उपलब्ध नहीं कराया गया है, जब कि वे खुद व्यक्तिगत रूप में मौजूद थे और उन्होंने कांग्रेस को सम्बोधित किया था। यह चीज मेरे मन को अत्यधिक बेचैन (agitate) कर रही है। इसका कारण यह है कि यदि हम इस सम्भावना को नजर-अंदाज कर दें, तो जो सवाल पैदा होते हैं, उनकी व्याख्या करना बड़ा कठिन हो जाता है। इस रिपोर्ट में मेरा आशय जबरदस्त सैद्धांतिक असंगतियों एवं स्व-विरोधों, त्रुटिपूर्ण सैद्धांतिक अभिव्यक्तियों बेतुके (wild) दावों एवं घोर-चाटुकारिता तक से है, जिनकी नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट में भरमार है; यह यकीन करना बहुत ही कठिन है कि खुद माओ त्से-तुंग ने खुद ही स्वेच्छा से इसका अनुमोदन करने में कोई आपत्ति नहीं की। यह विश्वसनीय नहीं है। मैंने पहले ही अपना

संदेह व्यक्त कर दिया है कि क्या माओ ने इस रिपोर्ट की जरा भी पुष्टि की है।

मेरे मन में जो भी प्रश्न उठे हैं, मैं इसके परिणाम के बारे में जिस भी संभावना के बारे में सोच सका, आप के सामने संभाव्यता के तर्क-युक्ति विज्ञान के आधार पर पेश कर रहा हूं। लेकिन यह मात्र पार्टी कॉमरेडों की शिक्षा के लिए, हमारे बीच चर्चा के लिए ही है और आम जनता के बीच में खुले आम विचार-विमर्श के लिए नहीं है। जो कुछ भी मैं यहां चर्चा कर रहा हूं, वह बिलकुल हमारे पार्टी-कॉमरेडों तक ही सीमित रहना चाहिए। हम इस चर्चा को कम से कम फिलहाल प्रकाशित, व प्रसारित कतई नहीं कर सकते हैं। मैं इस बात की व्याख्या करके समझाता हूं जिस वजह से हमारे लिए ऐसा करना असंभव है और आप को भी इसे अवश्य दृष्टि में रखना चाहिए। अब मैंने जो कुछ भी कहा है, वह एक आशंका से अधिक कुछ नहीं है। हमारे पास अब तक कोई निश्चित सबूत नहीं है। बगैर किसी निश्चित सबूत के क्या हम इस पार्टी के विषय में ऐसी कोई बात कह सकते हैं जो उसकी छवि को धूमिल कर दे–वह पार्टी जो मुख्य रूप से क्रांति के महान परचम को बुलन्द किये हुए है, और अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के सामने आशा व प्रेरणा का एकमात्र स्रोत है? क्रांतिकारियों के रूप में, कम्युनिस्टों के नाते, क्या हम ऐसा कर सकते हैं? यदि हम ऐसा करें तो यह हद दर्जे की गैर-जिम्मेदाराना हरकत और कम्युनिस्ट आचरण विधि व नीति-नैतिकता का घोर उल्लंघन होगा।

नियम-सामान्य व विशेष

लिन बियाओ की रिपोर्ट में सिर्फ एक जगह पर कुछ मौलिक (original) चीज प्रतिपादित करने का एक प्रयास है और वह भी पूरी तरह गलत है। बाकी तो पहले कही गयी किसी चीज की पुनरावृत्ति और कुछ पक्षों में विशदीकरण (elaboration) ही है। लेकिन जो कुछ मौलिक रूप में प्रस्तुत किया गया है, वह तो गलत प्रस्थापना (proposition) है। मैं जरा व्याख्या करके रखता हूं। कुछ अरसा पहले, मैंने माओ त्से-तुंग रचित एक पुस्तक में पढा : ''विरोधी

शक्तियों की एकता का नियम भौतिकवादी द्वन्द्व-विज्ञान का एक बुनियादी नियम हैं।'' ("The law of unity of opposites is the basic law of materialist dialectics") इस सवाल की विस्तृत चर्चा में जाने के पहले, मैं एक बात को स्पष्ट करना चाहता हूं। मैंने माओ की असाधारण प्रतिभा के एक अत्यधिक सुन्दर पहलू पर गौर किया है। उन्होंने एक कला पर महारत एवं दक्षता हासिल की है जिसके द्वारा वे पहले से ही ज्ञात बात को–जिसे मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन या स्तालिन ने कहा है, उसे एक अलग शैली में, उनकी अभिव्यक्ति को रूपान्तरित करके और नया रंग रूप देकर सुन्दर ढंग से पेश कर सकते हैं। एक चीज को प्रस्तुत करने का यह तरीका, कभी-कभी बहुत ही निर्णायक और किसी चीज की तह तक पहुंचाने वाला बन जाता है। यह न सिर्फ चीन के बल्कि अन्य देशों के लोगों को एक विचार पर पकड़ हासिल करने में बड़ी मदद करता है। मगर सैद्धांतिक सवालों पर ऐसी शैली का उपयोग करते समय बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए ताकि सिद्धांत की सूक्ष्म समझदारी साहित्यिक एवं गीत-काव्यिक (lyrical) अभिव्यक्तियों के बोझ तले दब न जाये। इसका कारण यह है जैसा कि हम सभी जानते हैं कि दर्शन के क्षेत्र में यहां-वहां बल या जोर का तनिक भी हेर-फेर (shift) कहीं अतिरिक्त जोर या कहीं कम जोर देना ही मूल अन्तर्वस्तु को बदल देता है। जबकि दूसरों द्वारा तनिक से भटकाव की हालत में वे यह सिद्ध करने हेतु हरेक अभिव्यक्ति के विश्लेषण की बाल की खाल निकालते हैं कि ये सिद्धांत कितने संशोधनवादी हैं और बे-बात का बतंगड़ बना डालते हैं, उन्हें खुद अपने निजी कथनों के मामलों में भूल-चूकों की गंभीरता को कम करके नहीं देखना चाहिए।

अब मैं यह चर्चा करना चाहता हूं कि क्या विरोधी शक्तियों की एकता के सिद्धांत (principle) को द्वन्द्व-विज्ञान के बुनियादी नियम (basic law) के रूप में वर्णित किया जा सकता है। मेरी राय में 'सिद्धांत' (principle) को 'बुनियादी नियम' (basic law) का पर्यायवाची नहीं माना जाना चाहिए–क्योंकि, वह कभी-कभी एक परिघटना को सही रूप में समझने में दिक्कत पैदा करता है।

अलबत्ता, जहां तक मेरा और हमारी सेन्ट्रल कमेटी का सवाल है, हम इसमें कोई चीज अत्यधिक आपत्तिजनक नहीं देख पाते हैं। हम सोचते हैं कि यदि सही रूप में समझा जाये तो इसमें आपत्ति करने के लिए कुछ भी नहीं है, जब हम एक नियम के बारे में बात करते हैं तो इससे हमारा अभिप्राय क्योंकि एक विशेष नियम से होता है। जब 'नियम (law), शब्द (term) एक सामान्य नियम (general law) का अर्थ जतलाने हेतु इस्तेमाल किया जाता है तो इसको सिद्धांत (principle) के रूप में समझना चाहिए। इसके सिवाय एक नियम का अर्थ हमेशा एक विशेष नियम होता है जिसका अविर्भाव और तिरोभाव होता है, जो अस्तित्व में आता है और अस्तित्व से चला जाता है। अर्थात एक विशेष स्थिति में, एक विशेष नियम विशेष स्थिति की संगति में क्रियाशील होता है और उसी तरह, जब विकास क्रम में एक सर्वथा नयी स्थिति पैदा होती है, तो पुराना नियम अपर्याप्त हो जाता है तथा और आगे नयी स्थिति को नियंत्रित-संचालित नहीं कर सकता, यह गैर कारगर हो जाता है, तथा नयी स्थिति के अनुरूप एवं संगति में एक नया नियम अस्तित्व में आ जाता है और उसे नियंत्रित एवं संचालित करता है। आप सभी जानते हैं कि अपनी प्रसिद्ध रचना ''सोवियत संघ में समाजवाद की आर्थिक समस्याएं'' (Economic problems of socialism in U.S.S.R.) में स्तालिन ने इस सवाल पर चर्चा की है। हमारे लिए यह समझना जरूरी है कि किसी भी नियम की न तो सृष्टि की जा सकती है, न ही उसका ध्वंस किया जा सकता है। हम तो सिर्फ एक नियम का अध्ययन करके उसे जान सकते हैं और उसे समझ सकते हैं, उसके चरित्र को निर्धारित कर सकते हैं और सामाजिक प्रगति के लिए उसे काम में ला सकते हैं। जब माओ त्से-तुंग ने द्वन्द्व-विज्ञान (Dialectics) के बुनियादी नियम के बारे में उल्लेख किया तो उनका आशय इससे विशेष नियम नहीं था, बल्कि वह एक सामान्य नियम को सूचित करता था–कम से कम, हम इसी तरह समझते हैं और हमें इसमें ऐतराज का कोई कारण नजर नहीं आता है। द्वन्द्वात्मक विज्ञान की तीन मूल नीतियां या सिद्धांत (principle) क्या हैं? हम जानते हैं कि वे हैं:

एक : परिमाणगत परिवर्तनों से गुणगत परिवर्तन तथा विपरीत क्रम में (Vice-Versa)
दो : विरोधी शक्तियों की एकता
तीन : निषेध का निषेध

विरोधात्मक एवं मिलनात्मक द्वन्द्व

हमें इन तीनों सिद्धांतों (principles) को एक साथ इकट्ठे ही समझना चाहिए। ये तीनों अन्त: संबंधित एवं अभिन्न हैं और इसलिए अलग-अलग नहीं समझे जा सकते। किन्तु यदि कोई तत्व द्वन्द्व (theory) पर चर्चा करते समय, इन तीनों में से 'विरोधी शक्तियों की एकता' के सिद्धांत (principle) को जोर देकर पेश करता है, क्योंकि विरोधी शक्तियों का द्वन्द्व परिवर्तन की चालक शक्ति और केन्द्रीय बिन्दु है, और इसलिए वह जोर देता है कि परस्पर विरोधी शक्तियों की एकता और संघर्ष का सिद्धांत मूलभूत अवधारणा है–हालांकि मेरे विचार से अन्य दो सामान्य नियम भी उसके अन्दर साथ-साथ (simultaneously) क्रियाशील रहते हैं–मैं इसमें आपत्ति करने की कोई बात नहीं मानता हूं। मगर समस्या तो किसी और चीज की वजह से पैदा हुई। माओ को उद्धृत करने के तुरन्त बाद, लिन बियाओ ने विचार प्रकट किया कि मजदूर वर्ग की पार्टी का अन्दरूनी पार्टी संघर्ष भी इसी विरोधी शक्तियों की एकता के बुनियादी नियम द्वारा नियंत्रित होता है। उन्होंने माओ का जो उद्धरण पेश किया है वह यह है, ''वस्तुओं में अन्तर्विरोध का नियम यानी विपरीत शक्तियों की एकता का नियम भौतिकवादी द्वन्द्ववाद का बुनियादी नियम है।'' ठीक इसके बाद ही उन्होंने कहा है, ''हरेक पार्टी के भीतर दो लाइनों (कार्यदिशाओं) के बीच विरोध व संघर्ष समाज में वर्गों के बीच अन्तर्विरोधों और नये व पुराने के बीच अन्तर्विरोधों का पार्टी के भीतर प्रतिफलन है। अगर पार्टी के अन्दर अन्तर्विरोध न रहें और उन्हें हल करने के लिए कोई संघर्ष न चलाया जाए तथा फालतू व बेकार को त्याग न दिया जाए और नये व ताजे विचारों को ग्रहण न किया जाये तो पार्टी की जिन्दगी समाप्त हो जायेगी।''

दूसरे शब्दों में, लिन बियाओ के अनुसार, क्योंकि विरोधी शक्तियों की एकता भौतिकवादी द्वन्द्व-विज्ञान का बुनियादी नियम है, इसलिए यह अन्दरूनी पार्टी संघर्ष के मामले में भी अवश्य ही काम करता है। मैं समझता हूं कि इसे इस तरीके से समझना गलत होगा। परस्पर विरोधी दो लाइनों के बीच संघर्ष कभी-कभी अन्दरूनी पार्टी संघर्ष में संभव हो सकता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि पार्टी के अन्दर हर कोई संघर्ष दो लाइनों के संघर्ष का रूप ग्रहण कर लेता है। हमें याद रखना चाहिए कि संघर्ष का अर्थ अनिवार्य रूप से विरोधात्मक शक्तियों के बीच संघर्ष ही नहीं होता है; मिलनात्मक (non-antagonistic) शक्तियों के बीच संघर्ष भी संघर्ष का एक विशेष रूप होता है।

दूसरे, हम जानते हैं कि एक वर्ग-विभाजित समाज में, दो परस्पर विरोधी वर्गों के बीच संघर्ष प्रधान द्वन्द्व है और यह विरोधात्मक द्वन्द्व की श्रेणी में आता है। मार्क्सवाद हमें सिखाता है कि इस द्वन्द्व का उद्देश्य एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग को उखाड़ फेंकना है। एक वर्ग को विरोधी वर्गों द्वारा उखाड़ फेंकने की चरम परिणति के माध्यम से ही उस द्वन्द्व को हल करना पड़ता है। विशेष रूप से एक पूंजीवादी समाज में जितने अरसे तक मजदूर वर्ग पूंजीपति वर्ग को राज्य सत्ता से उखाड़ फेंकने लायक पर्याप्त शक्ति को संघटित करने में असमर्थ रहता है, तब तक उसे विरोधी शक्तियों की एकता की मूल नीति का अनुसरण करते हुए पूंजीपति वर्ग को उखाड़ फेंकने के अंतिम लक्ष्य से वर्ग संघर्ष संचालित करना पड़ता है।

अन्दरूनी पार्टी संघर्ष–इसका उद्देश्य

लेकिन मजदूर वर्ग की पार्टी के अन्दर जो संघर्ष होता है, उसका चरित्र किस तरह का होता है? वहां क्या स्थिति होती है? जैसा कि हम समझते हैं, स्थिति ऐसी होती है कि पार्टी में नेता से लेकर आम कार्यकर्ता तक, हरेक उन्हीं एकसमान मूलभूत सिद्धांतों (fundamentals) के आधार पर एक ही वर्ग दृष्टिकोण, दर्शन, उसी एक वर्ग पद्धति के नजरिये से सक्रिय रहता है। फिर भी, यह बिलकुल संभव है कि इसके बारे में मतभेद उभर आये कि किस

प्रकार हरेक कॉमरेड इन सवालों को समझते हैं। और, इन मतभेदों पर संघर्ष, जो पार्टी के अन्दर लगातार जारी रहता है, उसका उद्देश्य पार्टी की एकता को और ज्यादा मजबूत करना और पुख्ता बनाना है, जिसको हम सभी ने सामूहिक रूप से निर्मित किया है।

क्योंकि हम सभी बुनियादी राजनीतिक लाइन के बारे में सामान्य मूलभूत सिद्धांतों की एकता के आधार पर सक्रिय हैं, इसलिए इस संघर्ष को एकता उन्मुखी किया जा सकता है। इसलिए कॉमरेडों के व्यक्तिगत अनुभवों, वैचारिक लाइन की समझदारी, दृष्टिकोण और दैनन्दिन प्रोग्रामों के बारे में मतभेदों के कारण द्वन्द्व को केन्द्र करके पार्टी के अन्दर संघर्ष जारी रहता है। पार्टी के अन्दर तीव्र वैचारिक संघर्ष संचालित करना ही मतभेदों को दूर करने और एकता को पुख्ता बनाने का एकमात्र रास्ता है। माओ त्से-तुंग ने अन्दरूनी पार्टी संघर्ष के सवाल पर विस्तार से चर्चा की है और इस संघर्ष के चरित्र की इसी तरह से व्याख्या की है। लेकिन लिन बियाओ का कथन माओ के कथन से भिन्न है। सच कहें, तो भौतिकवादी द्वन्द्व-विज्ञान के बुनियादी नियम के रूप में विरोधी शक्तियों की एकता को वर्णित करने के बाद, लिन बियाओ के इस कथन ने, कि मजदूर वर्ग की पार्टी भी इस बुनियादी नियम पर क्रियाशील रहती है, भ्रान्ति को दूर करने के बजाय और भी ज्यादा गलतफहमी पैदा कर दी है। वास्तव में वह अन्दरूनी पार्टी संघर्ष के चरित्र के बारे में कोई सही समझदारी प्रदान नहीं कर सका। उनके कथन का जो निष्कर्ष निकलता है वह है कि पार्टी के अन्दर, किसी भी सवाल पर, जब भी कोई मतभेद, और इस मतभेद को केन्द्र करके एक द्वन्द्व पैदा होता है—वह द्वन्द्व, दो परस्पर विरोधी शक्तियों के बीच, दो लाइनों के बीच के द्वन्द्व का चरित्र अनिवार्य रूप से ग्रहण कर लेता है; अर्थात ऐसे संघर्ष को तुरंत बुर्जुआ हेडक्वाटर्स और सर्वहारा हेडक्वाटर्स के बीच संघर्ष जैसा माना जायेगा। अत: पार्टी के अन्दर चाहे जिस भी मतभेद पर जो भी बातचीत होगी, उन्हें दो विश्वदृष्टिकोणों के बीच संघर्ष, परस्पर दो लाइनों के बीच संघर्ष के रूप में ही समझा जायेगा।

इस रूप में चीजों को ग्रहण करने से पार्टी के अन्दर अराजकता की स्थिति पैदा हो जायेगी। लिन बियाओ के कथन का निहितार्थ है कि यदि समाज में दो परस्पर विरोधी वर्गों के बीच द्वन्द्व को केन्द्रित करके पार्टी के भीतर संघर्ष लगातार जारी न रहे, तो वह पार्टी एक कम्युनिस्ट पार्टी रहती ही नहीं, अतः दो वर्ग दृष्टिकोणों, दो वर्ग स्वार्थों, एवं दो वर्ग उद्देश्यों के आधार पर पार्टी के अन्दर इस किस्म का संघर्ष निरन्तर जारी रहेगा, पार्टी के अन्दर एक जीवन संग्राम का सबूत होगा। इस परस्पर दो लाइनों के बीच ही संघर्ष का घटित होना, पार्टी के अन्दर हरेक संघर्ष का अर्थ परस्पर दो लाइनों के बीच संघर्ष, दो मूलभूत रूप से विरोधी ताकतों के बीच एक संघर्ष होता है। वास्तव में लिन बियाओ ने अन्दरूनी पार्टी संघर्ष को वर्ग संघर्ष के साथ गड्डमड्ड कर दिया है। वरना यदि हम मान लें कि पार्टी के अन्दर यह परस्पर दो लाइनों के बीच संघर्ष-बुर्जुआ लाइन व सर्वहारा लाइन के बीच संघर्ष ही होता है और हमेशा होता रहेगा–तो हमें इस बात पर भी सहमत होना पड़ेगा कि इस संघर्ष का उद्देश्य एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग को ध्वस्त करना, उखाड़ फेंकना है। उस अवस्था में मजदूर वर्ग की पार्टी को अब सर्वहारा वर्ग का अगुआ दस्ता (vanguard detachment) नहीं कहा जा सकता। इसे तो एक ही साथ बुर्जुआ व सर्वहारा, दोनों वर्गों का अगुआ दस्ता कहना पड़ेगा। तब सवाल पैदा होता है कि कौन सा वर्ग जीतेगा? अगर वास्तविकता यह हो तो यह संघर्ष एक असली कम्युनिस्ट पार्टी बनाने का ही संघर्ष हो जाता है। लेकिन, कुदरतन, यह अन्दरूनी पार्टी संघर्ष के सिद्धांत द्वारा संचालित नहीं किया जा सकता। अतः हम सोचते हैं कि लिन बियाओ ने अन्दरूनी पार्टी संघर्ष के विषय में जो कुछ कहा है–वह गलत है।

पार्टी असली कम्युनिस्ट पार्टी है या नहीं

वरिष्ठ (veteran) कॉमरेडों को अवश्य याद होगा कि जब लिऊ शाओची की पुस्तक अन्दरूनी पार्टी संघर्ष (inner party struggle) प्रकाशित हुई थी–वह अवश्य ही चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व की स्वीकृति से प्रकाशित हुई होगी–तो हमने अपनी अन्दरूनी

पार्टी चर्चाओं में कुछ आलोचनात्मक टिप्पणियां की थीं। मैंने इंगित किया था कि पहले, यह साबित करना जरूरी है कि क्या मजदूर वर्ग के नाम से मजदूर वर्ग–पार्टी सचमुच में ही सही मजदूर वर्ग पार्टी है या नहीं। इतिहास के मापदण्ड व विज्ञान एवं तर्क-विज्ञान की कसौटी पर, उसके पद्धतिगत दृष्टिकोण, निर्माण की उसकी प्रक्रिया, उसके नेतृत्व के चरित्र के साथ-साथ जिस देश में वह कार्यरत है, उसकी विशेष परिस्थिति में उसके द्वारा क्रांति की अपनाई गयी रणनीति व रणकौशल–इन सब के बारे में विश्लेषण करके सिद्ध करना होगा कि वह सही कम्युनिस्ट पार्टी है कि नहीं; सिर्फ तभी अन्दरूनी पार्टी संघर्ष के उद्देश्य का सवाल उठ सकता है; उसका मजदूर वर्ग चरित्र स्थापित किये जा चुकने के बाद ही यह कहा जा सकता है कि अन्दरूनी पार्टी संघर्ष संचालित करने का उद्देश्य उसकी एकता को पुख्ता करना और उसके संगठन को सुदृढ़ करना है। मगर यह साबित किये बगैर ही यदि यह तर्क दिया जाए कि अमुक पार्टी असली कम्युनिस्ट पार्टी है, क्योंकि उस पार्टी का नाम कम्युनिस्ट रखा गया है, इसलिए अन्दरूनी पार्टी संघर्ष का उद्देश्य एकता पर पहुंचना है, तब तो अवश्य ही दिक्कत पैदा होगी; ऐसे तर्क का लाभ उठाकर विभिन्न देशों में जो पार्टियां सिर्फ नाम की तो कम्युनिस्ट हैं, लेकिन वस्तुतः चरित्र में गैर-कम्युनिस्ट हैं, उनके नेतृत्व कम्युनिस्ट पार्टियों के रूप में छद्म वेश धारण कर दावा करेंगे कि उनकी पार्टियों में भी अन्दरूनी पार्टी संघर्ष विद्यमान है, और यह कि एकता हासिल करने के उद्देश्य से संघर्ष चलाया जाता है। वे मजदूर वर्ग स्वार्थ के विरुद्ध बहाने के रूप में इसे इस्तेमाल करेंगे। मैंने नोट किया कि लिऊ शाओची की पुस्तक, यद्यपि सामान्य रूप में तो सही है, मगर एकांगीपन से ग्रस्त है। मैंने इन बातों की चर्चा 1954 में प्रकाशित पुस्तक 'कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया एक्स-रेड'* पुस्तिका में भी की थी।

जब विरोधात्मक द्वन्द्व मिलनात्मक द्वन्द्व में रूपान्तरित हो जाता है

मैं महसूस करता हूं कि इस संबंध में द्वन्द्व सिद्धांत (theory)

* 1954 में प्रकाशित। मूल बांग्ला पुस्तिका 1952 में प्रकाशित।

के कुछ पक्षों पर चर्चा करनी चाहिए। मैं सोचता हूं और इसी तरह हरेक मार्क्सवादी को सोचना चाहिए, कि एक परिघटना को, एक समस्या को सही रूप में समझने के लिए, हमें उसके द्वन्द्व की प्रकृति को, न सिर्फ सामान्य द्वन्द्व की बल्कि उसके द्वन्द्व की विशिष्टता को, अस्तित्व की उसकी विशिष्ट विधि (mode) की विशेष जटिलता को भी सूक्ष्म रूप से समझना चाहिए। हमें अत्यधिक सावधानीपूर्वक समझने की कोशिश करनी चाहिए कि किस परिस्थिति के तहत द्वन्द्व क्या रूप ग्रहण कर सकता है। अगर हम इस तरीके से विश्लेषण करें तो पक्के तौर पर समझ सकेंगे कि एक विशेष स्थिति में एक द्वन्द्व जो एक विरोधात्मक द्वन्द्व के रूप में विद्यमान होता है, एक भिन्न संदर्भ में, एक मिलनात्मक द्वन्द्व बन सकता है। इस बात को भली-भांति समझने के लिए कुछ उदाहरण शायद मदद कर सकें।

उदाहरणस्वरूप, भारत के मजदूर वर्ग के दायरे (orbit) को ही लीजिए। यहां वे मजदूर हैं जो मजदूरों के परिवारों से संबंध रखते हैं; और वे मजदूर भी, जिनका किसानी जीवन से अभी भी संबंध सूत्र टूटा नहीं है, और इसलिए जो किसान समुदाय की मानसिकता के प्रभाव से ग्रस्त हैं। शहरी मध्यम वर्ग से आने वाले मजदूर भी हैं, जो शहरी मध्यम वर्ग की संस्कृति एवं विचारों के जबरदस्त प्रभाव को ढो रहे होते हैं। ये तीन श्रेणियां एक साथ मजदूर वर्ग को निर्मित करती हैं। अब समूचे रूप में मजदूर वर्ग या मजदूर वर्ग की पार्टी पर विचार करें। हमें याद रखना चाहिए कि समाज के विभिन्न हिस्सों से आने की वजह से इस मजदूर वर्ग के बीच में विभिन्न तरह की व्यक्तिगत झौंक रहती है, विभिन्न जंजाल (fads) जमा रहते हैं। इस मजदूर वर्ग के विभिन्न हिस्सों के बीच में इस तरह के विभिन्न विषयों को केन्द्र कर के उनके मानसिक गठन (psychological make-up), पुरानी परम्पराएं, रुचि, संस्कार इत्यादि विभिन्न सवालों को केन्द्र करके संघर्ष दिखाई दे सकता है, इसको अलग करके विचार करने पर इसमें विरोधात्मक द्वन्द्व का चरित्र प्रतीत हो सकता है। मगर ज्योंही बुर्जुआ वर्ग के खिलाफ संघर्ष का सवाल सामने आता है तो वही द्वन्द्व उस विशेष परिस्थिति

के संदर्भ में, गौर करने पर, मिलनात्मक (non-antagonistic) बन जाता है।

यह बात विपरीत दायरे, पूंजीपति वर्ग के दायरे (orbit) के मामले में भी सच है। बाजार व मुनाफे को लेकर पूंजीपति वर्ग के अन्दर अर्थात एक एकाधिकारी घराने व दूसरे एकाधिकारी घराने के बीच संघर्ष एक विराधात्मक द्वन्द्व है। कुछ खास स्थितियों में यह द्वन्द्व ऐसा रूप भी ले लेता है, जो दो देशों के बीच वास्तविक लड़ाई का कारण भी बन सकता है। अर्थात यह द्वन्द्व युद्ध के रूप में विरोधात्मक द्वन्द्व का रूप ले लेता है। मगर जिस क्षण पूंजीपति वर्ग मजदूर वर्ग क्रांति की धमकियों-खतरों का सामना करता है, जब समूचे तौर पर उनका समाजवादी खेमे से मुकाबला होता है, तब उस विशेष स्थिति के संदर्भ में उनके बीच द्वन्द्व का चरित्र स्वत: ही बदल जाता है और मिलनात्मक हो जाता है।

कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर द्वन्द्व

एक मजदूर वर्ग की असली पार्टी में अन्दरूनी पार्टी संघर्ष के चरित्र को निर्धारित करते समय हमें अवश्य ही कुछ खास पहलुओं को ध्यान में रखना चाहिए। उदाहरणस्वरूप यह हो सकता है कि मार्क्सवाद की बुनियादी नीतियों (tenets) की समझदारी, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के विश्लेषणों, पद्धतिगत नजरिया, यानी एक परिघटना को समझने में चिंतन प्रक्रिया को निर्देशित करने वाला विश्व दृष्टिकोण या वर्ग दृष्टिकोण, पार्टी-गठन निर्माण की प्रक्रिया, पार्टी संगठन के बुनियादी सिद्धांत या मूल नीतियां (principles) और इसके साथ-साथ सामूहिक नेतृत्व की अवधारणा जैसे सर्वाधिक महत्वपूर्ण व मूलभूत पहलुओं पर पार्टी के साथ किसी कॉमरेड के सहमत होने के बावजूद, वह किसी परिस्थिति का जायजा लेते समय या किसी खास घटना के मामले में विचार करते समय बुर्जुआ औपचारिक (formal) पद्धति द्वारा प्रभावित हो सकता है। बिल्कुल, स्वाभाविक रूप से, इस विशेष मामले में प्रतीत होने वाला द्वन्द्व दो विपरीत विचारों के बीच एक संघर्ष का रूप अवश्य ही लेगा। अर्थात हालांकि दो कॉमरेड, जो उसी एक मुद्दे को दो विरोधी

दृष्टिकोणों से समझ रहे हैं, जहां तक कम्युनिस्ट विचारधारा, वर्ग दृष्टिकोण, पार्टी गठन की प्रक्रिया तथा ऐसे ही अन्य मूलभूत पक्षों का संबंध है, उसी एक ही दायरे (orbit) में है। फिर भी द्वन्द्व की पृथक घटक (element) के रूप में जांच-परख करने पर यह विशेष द्वन्द्व शायद एक विरोधात्मक द्वन्द्व के रूप में दिखाई दे। तब ऐसे मामलों में हम किन मूल नीतियों (principles) पर संघर्ष संचालित करें।

हमें याद रखना चाहिए कि जिस विशेष मुद्दे को लेकर द्वन्द्व पैदा हुआ है, उस विशेष मुद्दे के बारे में कौन सा विचार सही है और कौन-सा विचार गलत है, मार्क्सवादी विज्ञान की कसौटी पर उसकी जांच-परख करने के लिए हमें पार्टी के अन्दर एक तीव्र वैचारिक संघर्ष अवश्य संचालित करना पड़ेगा और इस प्रक्रिया (course) का अनुसरण करते हुए ही, हमें इस द्वन्द्व को अवश्य हल करना चाहिए। यहां किसी समझौते का सवाल ही पैदा नहीं होता, क्योंकि कॉमरेडों के बीच संबंध में दरार पैदा करने का वहां कोई सवाल ही नहीं पैदा हो सकता। इसलिए हमें इस संघर्ष को वर्ग शत्रुओं के बीच संघर्ष के रूप में नहीं समझना चाहिए। बल्कि हमें इस संघर्ष को इस तरीके से संचालित करना होगा जिससे न सिर्फ कॉमरेडों के बीच संबंध न बिगड़े, बल्कि इसके उलट उनके बीच समझदारी अधिक स्पष्ट, उनके संबंध अधिक घनिष्ठ हो जायें तथा इस द्वन्द्व के सही समाधान के माध्यम से पार्टी की एकता और पुख्ता हो जाये, इस प्रक्रिया में पार्टी और अधिक मजबूत हो जाये।

अत: हमें उस समय तक लड़ना होगा, जब तक विशेष सवाल का मुकम्मिल हल न हो जाये, मगर पार्टी की समग्र एकता के ढांचे (frame work) के अन्तर्गत ही इसे करना होगा–इस संघर्ष का चरित्र ही ऐसा है। दूसरे शब्दों में, इस संघर्ष का उद्देश्य पार्टी की और ज्यादा एकता अर्जित करना है, इसे भंग करना नहीं है। यह श्रम व पूंजी के बीच संघर्ष जैसा–एक-दूसरे को उखाड़ फेंकने का संघर्ष नहीं हो सकता। अगर ऐसा होता तो यह कहने का कोई अर्थ नहीं होता कि हम पार्टी के अन्दर मूल नीतियों (fundamentals)

के तमाम सवालों पर उसी एक ही विश्व दृष्टिकोण से निर्देशित हैं और उसी एक ही दायरे (orbit) में सक्रिय हैं आदि। इस बात को और ज्यादा स्पष्ट करने के लिए आइए, दो भिन्न देशों में दो कम्युनिस्ट पार्टियों के मामले पर विचार करें, अर्थात जहां दोनों पार्टियों को कम्युनिस्ट होने के लिए उनके विश्व दृष्टिकोण व पद्धति-विज्ञान के नजरिये (approach) के आधार पर जांचा-परखा जाये, तो दोनों ही द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी हैं। उनमें से हरेक की कुछ दोष-कमियों के बावजूद, चरित्र में दोनों कम्युनिस्ट हैं। अब ऐसी हालत में अगर एक सैद्धांतिक सवाल पर दोनों के बीच कुछ मतभेद हो जाये, तो यह स्वीकार करना होगा कि अंतिम विश्लेषण में यह मतभेद वस्तुतः वर्ग दृष्टिकोण में है। लेकिन क्योंकि दोनों एकता के उसी एक ही दायरे (orbit), एकता के उसी एक ही बुनियादी ढांचे से ताल्लुक रखती हैं, इसलिए इस मतभेद के कारण उनका आपसी संबंध नहीं बिगड़ना चाहिए, क्योंकि उनके मतभेद को लेकर दोनों पार्टियों के बीच संघर्ष एकता के ढांचे के अन्दर ही संचालित किया जा रहा है। हालांकि लिन बियाओ के अनुसार, चाहे एक कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर, या दो देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों के बीच, अथवा साम्यवादी खेमे के अन्दर, चाहे जो भी मतभेद हों, वे मूलभूत (fundamental) मतभेद ही हैं। और, इसलिए यहां संघर्ष का अर्थ अनिवार्य रूप से दो विरोधी वर्गों के बीच–दो लाइनों के बीच संघर्ष, बुर्जुआजी व सर्वहारा के बीच, दो हेडक्वार्टरों के बीच संघर्ष ही है। भौतिकवादी द्वन्द्व-विज्ञान का प्राथमिक ज्ञान रखने वाला कोई भी इन्सान एक ऐसे निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है या इस सिद्धांत का ऐसा निरूपण नहीं कर सकता है कि द्वन्द्व का अर्थ अनिवार्य रूप से ही विरोधात्मक प्रकृति का द्वन्द्व ही होता है, यह कि मिलनात्मक द्वन्द्व जैसी कोई चीज होती ही नहीं है। मुझे लगता है कि यह भ्रान्ति, माओ की शोध-प्रस्थापना कि विरोधी शक्तियों की एकता द्वन्द्व-विज्ञान का बुनियादी नियम है–को अन्दरूनी पार्टी संघर्ष में लागू करने के प्रयास से पैदा हुई है।

प्रसंगवश मैं एक अन्य बात पर चर्चा करना चाहता हूं। चिंतन में वर्ग का प्रभाव एक वास्तविकता है अर्थात बुर्जुआ वर्ग चिंतन

शायद सर्वहारा वर्ग की पार्टी को भी प्रभावित कर सकता है। लेकिन उसे चिंतन का वर्ग रुझान (class trend) नहीं कहा जा सकता। जब हम चिंतन के एक रुझान के बारे में चर्चा करते हैं, तो यह एक वर्ग विभाजित समाज में वह चिंतन के एक वर्ग-रुझान के सिवाय कुछ नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि चिंतन के रुझान का अर्थ चिंतन की एक प्रक्रिया होता है और उसमें एक पद्धति-विज्ञान का दृष्टिकोण शामिल होता है। कुदरतन, सवाल उठता है कि एक मार्क्सवादी-लेनिनवादी या मजदूर वर्ग-पार्टी में एक ही साथ बहुत से समानान्तर वर्ग-चिंतनों का अस्तित्व संभव है या नहीं। एक मजदूर वर्ग पार्टी में बहु वर्ग-चिंतन (multi-class thinking) कैसे विद्यमान हो सकता है? चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की भी ऐसी अवधारणा नहीं है। ऐसा कूड़ेदान में फेंका जाने वाला (trash) विचार सिर्फ नम्बूदरीपाद-रणदिवे मार्का स्वयंभू (self-styled) कम्युनिस्टों द्वारा ही प्रस्तुत किया जा सकता है। वे एक समय कभी कहा करते थे : ''हमारी पार्टी में गुट व धड़े नहीं हैं। हमारी पार्टी में संघर्ष वस्तुत: चिंतनों के विभिन्न रुझानों के बीच संघर्ष है''। यह दावा खोखला है कि उनकी पार्टी में गुट नहीं हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि वे यह समझ ही नहीं सके हैं कि एक वर्ग विभाजित समाज में, एक रुझान का अर्थ लाजिमी तौर पर चिंतन का वर्ग रुझान ही होता है। सिर्फ वे ही ऐसी निरर्थक बातें कह सकते हैं जिन्होंने मार्क्सवादी क्लासिक को मात्र तोते की तरह रट-रटकर 'पचा' लिया है। जहां तक मेरा सवाल है, मैं तो यह सब समझने में असमर्थ हूं।

यहां एक सवाल पूछा गया है: पार्टी में या पार्टी कार्यकर्ताओं के मन में कभी-कभी गलत विचार क्यों पैदा होते हैं? मैं समझता हूं कि मुख्य रूप से अपर्याप्त वैचारिक स्तर, मानदण्ड की वजह से अर्थात समुचित व पर्याप्त सैद्धांतिक (thoretical) ज्ञान की कमी के कारण ऐसा होता है। वैचारिक स्तर की अपर्याप्तता ही वर्तमान पूंजीवादी समाज के तमाम प्रतिक्रियावादी विचारों, तमाम पेटी बुर्जुआ सनकों, सड़े-गले, गए-गुजरे विचारों की उर्वरा, उपजाऊ मिट्टी है। जिस तरह वृक्षों के खोखले कोटरों (hollows) में पक्षी अपना घोंसला

बनाते हैं, वैसे ही अपर्याप्त वैचारिक स्तर के खोखलेपन में तमाम पुरातनपंथी गये-बीते विचार पनपते हैं। यही कारण है कि पार्टी कॉमरेडों की चेतना के स्तर को उन्नत करने का सवाल इतना ज्यादा महत्वपूर्ण है।

चार प्रमुख द्वन्द्वों को किस प्रकार समझें

यहां दूसरा सवाल यह उठाया गया : चार प्रमुख (major) विश्व द्वन्द्वों में से कौन-सा प्रधान (principal) द्वन्द्व है? मेरी राय में तो, यह सवाल ही अपने आप में गलत है, क्योंकि यह अवश्य ही ध्यान में रहना चाहिए कि सभी चारों द्वन्द्वों को प्रमुख द्वन्द्व कहा गया है, जिसका अर्थ यह है कि आज के विश्व के मुख्य (main) द्वन्द्वों के चरित्र को समझने के लिए चारों द्वन्द्वों का अवश्य ही एक साथ ही विचार किया जाना चाहिए। यह ही सही समझदारी है। बात यह नहीं है कि इन चार द्वन्द्वों में से कोई एक प्रधान (principal) है और अन्य उसके इर्द-गिर्द, चारों तरफ परिक्रमा करते रहते हैं। नहीं, मामला ऐसा नहीं है। इन चारों द्वन्द्वों में से किसी एक को प्रधान द्वन्द्व के रूप में चुना नहीं जा सकता है। इसके साथ ही यह भी सच है कि विश्व घटनाओं को तैयार करने, आकार देने में ये चारों प्रमुख या प्रधान द्वन्द्व एक समान भूमिका नहीं अदा करते हैं और न ही एक जैसा महत्व रखते हैं। घटनाओं की जटिलता व बदलाव पर निर्भर करते हुए किसी विशेष घड़ी में, इन चारों द्वन्द्वों में कोई सा एक द्वन्द्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण बन सकता है। कभी-कभी राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष की धारा का प्रवाह तेज हो सकता है तो किसी दूसरे समय पर पूंजीवाद के खिलाफ मजदूर वर्ग का संघर्ष प्रमुख (dominant) बन सकता है। किसी एक विशेष घड़ी में कौन सा द्वन्द्व ज्यादा शक्तिशाली बन जायेगा और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर ज्यादा प्रभाव डालेगा—यह घटनाओं के उतार-चढ़ाव की स्थिति की जटिलताओं और उस समय की शक्तियों के विन्यास पर निर्भर करता है।

अगर हम इस तरह इस बात को न समझें तो इसके गंभीर व हानिकारक परिणाम हो सकते हैं। उदाहरणस्वरूप, यदि कोई यह

दावा करता है कि पूंजीवादी देशों में श्रम व पूंजी के बीच अर्थात सर्वहारा वर्ग व पूंजीपति वर्ग के बीच द्वन्द्व ही आज विश्व में मुख्य द्वन्द्व है, तो आज की ठोस अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में मुख्य द्वन्द्व के विशेष चरित्र की इस गलत समझदारी के परिणामस्वरूप शांति-आन्दोलन के साथ-साथ शांतिपूर्ण सह अस्तित्व की नीति को क्षति पहुंचना अवश्यंभावी है और साम्राज्यवादियों पर शांति थोपना असंभव हो जायेगा। और यह, अपने क्रम में, अन्य खतरनाक परिणामों का कारण बन जायेगा। अवश्य ही, यह स्वीकार करना होगा कि संशोधनवादियों द्वारा सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीएसयू) का नेतृत्व हड़पने के परिणामस्वरूप और समाजवादी खेमे की नाना कमियों-खामियों की वजह से आज साम्राज्यवादियों पर शांति थोपने की संभावना काफी कम हो गयी है। असल बात यह है कि ये चारों द्वन्द्व एक साथ मिलकर आज के विश्व के प्रधान द्वन्द्व बनते हैं तथा इनमें से कौन सा द्वन्द्व एक विशेष अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा—यह घटनाओं के उतार-चढ़ाव पर निर्भर करता है।

नवोदित राष्ट्रवाद

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद की स्थिति में, उदाहरण के लिए, जब राष्ट्रों की दो समानान्तर विश्व व्यवस्थाएं—एक ओर पूंजीवादी-साम्राज्यवादी और दूसरी ओर समाजवादी विश्व व्यवस्थाएं उभर कर सामने आयीं—तब एशिया, अफ्रीका व लेटिन अमेरिका के उपनिवेशों में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों की शक्तिशाली लहर ने साथ ही साथ नवोदित (resurgent) राष्ट्रवादी देशों का भी आविर्भाव कर डाला। हमारी पार्टी की राय है कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में इन नवोदित राष्ट्रवादी देशों की एक अलग ही विशेष भूमिका है। चाहे साम्राज्यवादी व समाजवादी खेमों के बीच द्वन्द्व, युद्ध व शांति, विश्व क्रांति या अन्य कोई मामला हो, आज की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में इसकी भूमिका खासतौर पर गौरतलब है। मैं सोचता हूं कि इस पहलू का खुलासा करना उपयोगी होगा। आज के विश्व के चार प्रमुख द्वन्द्वों को जब लेनिन ने निरूपित किया था, तो उस समय

सोवियत संघ ही एकमात्र समाजवादी देश था। मगर दूसरे विश्वयुद्ध के बाद की परिस्थिति में कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण परिवर्तन घटित हो चुके हैं। कई एक देशों में समाजवाद की स्थापना के साथ पूंजीवादी-साम्राज्यवादी विश्व व्यवस्था के समानान्तर राज्यों की एक विश्व समाजवादी व्यवस्था का आविर्भाव हो चुका है। इसके साथ ही साथ पूंजीवादी बाजार के समानान्तर समाजवादी बाजार भी अस्तित्व में आ चुका है। इसके अतिरिक्त, एशिया, अफ्रीका व लेटिन अमेरिका के देशों में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों के तीव्र क्रांति-ज्वार के जरिये इन बहुत से उपनिवेशों की स्वाधीनता प्राप्ति ने साम्राज्यवाद को गहरा आघात पहुंचाया है और उसकी जंजीर को और भी ज्यादा कमजोर कर दिया है। हमें एक तरफ इन नव-स्वाधीनता प्राप्त राष्ट्रवादी देशों के साम्राज्यवाद के साथ और दूसरी तरफ इनके समाजवाद के साथ द्वन्द्व पर विशेष ध्यान अवश्य देना चाहिए। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के द्वन्द्वों का अध्ययन करते समय, यदि आज कम्युनिस्ट लोग इस द्वन्द्व का सही रूप में मूल्यांकन करने में विफल रहते हैं, तो वे साम्राज्यवाद के विरुद्ध इन नव-स्वाधीन राष्ट्रवादी देशों के महत्व व उनकी भावी भूमिका को समझने में असमर्थ रहेंगे। इसी प्रकार, वे नव-स्वतंत्र राष्ट्रवादी देशों में सापेक्ष रूप से विकसित देशों के चरित्र को समझने में भी असफल रहेंगे, जिनमें भले ही वे साम्राज्यवाद विरोधी भूमिका भी क्यों न निभा रहे हैं, साम्राज्यवादी विशिष्टताएं विकसित होने का एक छिपा रुझान अन्तर्निहित है। इसके अलावा, वे इन नव-स्वतंत्र राष्ट्रवादी देशों के समाजवादी देशों के साथ द्वन्द्व की जटिल प्रकृति को भी सही तौर पर समझने में सक्षम नहीं होंगे। कहने की जरूरत नहीं कि इस परिघटना को या इस विशेष द्वन्द्व की कल्पना करना लेनिन के लिए इस वजह से संभव नहीं था, क्योंकि तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में यह द्वन्द्व पैदा ही नहीं हुआ था। इसके महत्व एवं विशिष्टता की ओर ध्यान देने की यह जिम्मेदारी आज के कम्युनिस्टों पर, अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के वर्तमान नेताओं पर आ पड़ी है। हम मानते हैं कि आज विश्व में नव-स्वाधीन राष्ट्रवादी बुर्जुआ राज्यों के आविर्भाव व अस्तित्व के साथ पैदा होने

वाले इस नए द्वन्द्व को लेनिन द्वारा निरूपित चार प्रमुख द्वन्द्वों के साथ मिलकर पांचवें द्वन्द्व के रूप में स्वीकार करने के बारे में, यदि कोई संकोच हो, तो हम सुझाव देते हैं कि इस पर समान बल एवं महत्व दिया जाये मानो यह पांचवां द्वन्द्व ही हो।

हमारी राय में, अन्यथा, वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में बहुत सी जटिल घटनाओं का सही ढंग से विश्लेषण करना संभव नहीं होगा। जैसा कि मैंने पहले कहा है कि लिन बियाओ की रिपोर्ट में वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में इस नए एवं विशेष द्वन्द्व के बारे में कोई जिक्र भी नहीं है।

एक दूसरी सैद्धांतिक असंगति

जिस वजह से चीन की कम्युनिस्ट पार्टी नव-स्वाधीन राष्ट्रवादी देशों की इस विशेष प्रकृति का मूल्यांकन नहीं कर सकी, उसका एक अन्यतम कारण हमारी नजर में आया है। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के पुराने दस्तावेजों में से कुछ में हमने पाया है कि उन्होंने तमाम नव-स्वाधीन राष्ट्रवादी देशों को जनता की जनवादी क्रांति (people's democratic revolution) के स्तर (stage) में होना माना है। अर्थात उन्होंने ऐसे तमाम देशों के लिए जनगणतांत्रिक क्रांति का एक आम नुस्खा तैयार कर दिया है। उनके अनुसार भारत, घाना, इन्डोनेशिया, मोरक्को, सूडान, मिस्र-सभी अर्द्ध औपनिवेशक देश हैं, उनके राज्य सत्ता के चरित्र में कोई बुनियादी फर्क नहीं है। अतः इन सभी देशों में क्रांति का स्तर राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम का ही है, सिर्फ विकास की मात्रा (degree) में ही फर्क है। वे उनके बीच कोई अन्य फर्क नहीं देख पाते। यही कारण है कि वे नवोदित राष्ट्रवाद (resurgent nationalism) की प्रकृति एवं चरित्र को भली-भांति समझने में असमर्थ रहे हैं। हमारी पार्टी का इस मुद्दे पर चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के साथ बुनियादी (fundamental) मतभेद है।

मैंने अपनी चर्चा इस टिप्पणी के साथ शुरू की थी कि लिन बियाओ की रिपोर्ट बहुत-सी सैद्धांतिक असंगतियों से भरी पड़ी है। अब इस मुद्दे पर सैद्धांतिक विसंगति सुस्पष्ट है। चीन की कम्युनिस्ट

पार्टी के विश्लेषण के अनुसार, यद्यपि भारत एक नव-स्वाधीन देश है, लेकिन वह जनता की जनवादी क्रांति के स्तर में है। यदि क्रांति के स्तर के इस विश्लेषण को स्वीकार किया जाय, तो वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि भारतीय राज्य एक अर्द्ध औपनिवेशक, अर्द्ध सामंती राज्य है और इसलिए वह एक पिट्ठू (satellite) राज्य ही है। उस स्थिति में, चार प्रमुख द्वन्द्वों की रोशनी में, भारत साम्राज्यवाद व उत्पीड़ित (oppressed) राष्ट्रों के बीच द्वन्द्व की श्रेणी (category) में आता है। तथापि, यह याद रखना चाहिए कि जब कभी कोई राष्ट्र किसी किस्म के उत्पीड़न के तहत होता है, तो वह एक उत्पीड़ित राष्ट्र नहीं बन जाता है। क्योंकि इंग्लैंड या फ्रांस पर भी अमेरिकी उत्पीड़न है, इसी बिना पर हम नहीं कह सकते कि वे उत्पीड़ित राष्ट्र हैं। यदि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी जनता की जनवादी क्रांति के सिद्धांत को भारत पर लागू मानती है, जिसका अर्थ भारतीय राज्य का वर्ग-चित्रण अर्द्ध सामंती, अर्द्ध औपनिवेशक के रूप में है, तब वे शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व या पंचशील* तक की नीति को प्रगतिशील के रूप में गुणगान कैसे कर सके, जिसके प्रवक्ताओं में से एक भारत देश के प्रमुख जवाहरलाल नेहरू थे। इसका कारण यह है कि भारत की विदेश नीति की प्रगतिशील के रूप में स्वीकृति, चाहे अप्रत्यक्ष रूप में हो, भारत सरकार की साम्राज्यवाद-विरोधी भूमिका की मान्यता को पूर्व शर्त बनाती है। अतः इस पहलू से जांच-परख करने पर, यह स्पष्ट हो जाता है कि, चाहे जो भी स्थिति (position) हो, भारत को साम्राज्यवाद व उत्पीड़ित राष्ट्रों के द्वन्द्व की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। तब, भारत किस श्रेणी के राज्य से संबंध रखता है? चार प्रमुख द्वन्द्वों की किस श्रेणी में वह आता है? बहरहाल, यदि हम उनके इन दोनों मूल्यांकनों की तुलना करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वही भारतीय राज्य, जो उनकी राय में साम्राज्यवाद का एक पिट्ठू (satellite) है वह साम्राज्यवाद-विरोधी भूमिका निभा रहा है! तो यह कैसे संभव है?

---

* 1954 में बान्डुंग कान्फ्रेंस में अपनायी गयी पांच वसूलों की नीति

यदि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा सोवियत संघ की आलोचना के बिन्दुओं को आप नोट करें, तो आप पायेंगे कि वे भारतीय प्रतिक्रियावादियों को अमेरिकी साम्राज्यवादियों व सोवियत संशोधनवादियों के साथ इस तरीके से वर्गीकृत (bracket) करते हैं, जिसका अर्थ होता है कि भारतीय पूंजीपति वर्ग का चरित्र उससे अलग है, जिसे वे दूसरी तरह स्वीकार करेंगे। उदाहरण के लिए, नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट में कहा गया है : ''जब ख्रुश्चेव सत्ता में आये एवं खासकर जब सोवियत संशोधनवादियों ने अमेरिकी साम्राज्यवादियों और भारत के प्रतिक्रियावादियों के साथ गठजोड़ कर ली'' आदि, आदि। हालांकि वे साफ-साफ नहीं कह रहे हैं, मगर यह समझना मुश्किल नहीं है कि भारत जैसे राज्य के लिए एक ओर अमेरिकी साम्राज्यवाद और दूसरी ओर, उनकी राय में, एक सामाजिक साम्राज्यवादी (social imperialist) देश के साथ गठजोड़ करने का सवाल तभी उठ सकता है, बशर्ते कि इस बात पर सहमत हुआ जाये कि भारतीय राज्य ने एक साम्राज्यवादी चरित्र ग्रहण कर लिया है, एकाधिकारी पूंजीवाद को, वित्तीय पूंजी को और एक वित्तीय गुट-तंत्र (oligarchy) को जन्म दे दिया है। कितनी विचित्र बात है! जहां तक पंचशील नीति का संबंध है, साम्राज्यवाद-विरोधी भूमिका निभाने के कारण भारतीय राज्य का गुणगान किया गया है और अमेरिकी साम्राज्यवाद व सोवियत संशोधनवादियों के साथ गठजोड़ करने के मुद्दे पर भारतीय राज्य साम्राज्यवादी बन जाता है। लेकिन वहीं जनता की जनवादी क्रांति की जादुई शक्ति ऐसी है कि वह भारतीय बुर्जुआजी पर साम्राज्यवादियों के पिट्ठू होने का ठप्पा लगा देती है! मुझे आश्चर्य है कि वे ऐसी असंगतियों का तालमेल (reconcile) कैसे बैठा सके!

शांति के नारे के बारे में

हालांकि जिस तरीके से इस रिपोर्ट में शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व और पंचशील की नीति पर विचार किया गया है वह इस संबंध में हमारे अभिमत (stand) की पूरी तरह पुष्टि करता है। सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी व चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के बीच बृहद बहस

(ग्रेट डिबेट) के समय, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के बहुत से अंधभक्तों ने यह दावा किया और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के बहुत से दस्तावेज सुझाव देते हुए प्रतीत हुए कि शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति प्रकृति में आत्मसमर्पणवादी है और यद्यपि संशोधनवादी सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी इस नीति का अनुसरण करती थी, लेकिन चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने इसका समर्थन नहीं किया। शुरू से ही, हम दिखाते आ रहे हैं कि असली मतभेद इस मुद्दे पर नहीं है कि सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की इस नीति की पैरोकार है, चीन की कम्युनिस्ट पार्टी नहीं है। असली मतभेद का संबंध शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति के क्रांतिकारी तात्पर्य की सही समझदारी या उसे लागू करने के सही दृष्टिकोण से सवाल को देखने का है। नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट में इसको दिखाने के लिए सबूत मिलते हैं कि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी न तो इस नीति को अवसरवादी मानती है, और न ही वह इसके खिलाफ है।

यहां मैं एक बिन्दु पर बल दिए बगैर नहीं रह सकता। जब नव-स्वाधीन राष्ट्रवादी देशों के शासक बुर्जुआ वर्ग शांति की बातें करते हैं, तब वे ऐसा अपने फौरी स्वार्थों में ही करते हैं। वे शांति की बातें इसीलिए करते हैं, क्योंकि वर्तमान स्थिति-विशेष में शांति का नारा उनके स्वार्थ को सर्वोत्तम ढंग से पूरा करेगा। यदि विभिन्न देशों के कम्युनिस्ट इस वास्तविकता की पकड़ हासिल करने में असफल होते हैं और पूंजीपति वर्ग की उन बुर्जुआ सरकारों का गुनगान करना और इस नारे को समाजवादी देशों की असली शांति-नीति के साथ गड्डमड्ड (confuse) करना जारी रखते हैं, तो बहुत सी जटिलताओं का पैदा होना अवश्यम्भावी है। हमने देखा कि शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के सवाल पर सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी दोनों का रुख-रवैया (approach and attitude) त्रुटिपूर्ण रहता आया है। वे अक्सर एक नव-स्वाधीन राष्ट्रवादी देश का उस वक्त अनावश्यक रूप से गुणगान करते हैं, जब उसके साथ उनका संबंध अच्छा रहता है, मगर ज्यों ही किसी वजह से वह संबंध बिगड़ जाता है, तो वे उस देश के साथ इस तरीके से

बर्ताव करने लगते हैं कि नव-स्वाधीन राष्ट्रवादी देशों के साम्राज्यवाद के साथ द्वन्द्व को क्रांतिकारी आन्दोलन के पक्ष में इस्तेमाल करने की बजाए, जो उस देश को साम्राज्यवादी खेमे की ओर वस्तुगत रूप में धकेलने में ही मदद करता है।

मैं एक उदाहरण पेश करता हूं। हमने अपनी पहले की रचनाओं व लेखों में इस पर चर्चा की है। हमने चीनी कम्युनिस्ट पार्टी को दर्शाया था कि जब वे 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' (Indian and Chinese are brothers) का साथ-साथ नारा लगा रहे थे या जवाहरलाल की शांति-नीति का गुणगान कर रहे थे अथवा जब उनकी सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के साथ घनिष्ठ मैत्री थी, तब उन्होंने किसी भी मुद्दे पर भारत सरकार की आलोचना करने से परहेज किया था, बल्कि उल्टे प्रगतिशील का लेबल लगाया था। उन्होंने सैद्धांतिक पहलू तक से भी भारत सरकार की शांति-नीति और समाजवादी देशों की शांति-नीति के बीच में फर्क नहीं दर्शाया था। लेकिन, हमारी राय में, इन देशों की साम्राज्यवाद-विरोधी भूमिका को इस्तेमाल करते समय, उनकी हरेक चाल के पीछे अन्तर्निहित वर्ग-स्वार्थ और शांति के सवाल पर उनके समाजवादी खेमे के साथ फर्क को दर्शाया जाना चाहिए था, इसमें अन्तर्निहित वर्ग-उद्देश्य को बेनकाब किया जाना चाहिए था। इसमें विफलता के चलते भविष्य में गंभीर परिणामों का होना अवश्यंभावी है।

उस समय हमने दर्शाया था कि यदि भारतीय मजदूर वर्ग शीघ्र ही राज्य सत्ता पर कब्जा नहीं कर सका, तो हालांकि युद्ध व शांति के सवाल पर भारतीय बुर्जुआ वर्ग, चाहे जितनी भी सीमित सही, कुछ साम्राज्यवाद विरोधी भूमिका निभा रहा है, पूंजीवाद के विकास की प्रक्रिया में उसी बुर्जुआ वर्ग द्वारा साम्राज्यवादी विशिष्टताएं—चाहे छिपे रूप में ही सही—अर्जित कर चुकने पर, वह वस्तुतः जन क्रांतिकारी आन्दोलन का दमन करने के लिए साम्राज्यवाद के एजेन्ट के रूप में कार्य करेगा। हमने यह बात स्पष्ट रूप में कही थी। हम सोचते हैं कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने, इसीलिए गलती की, क्योंकि वह नव-स्वाधीन

राष्ट्रवाद की परिघटना को सही रूप में समझने में नाकाम रही।

नव-स्वाधीन राष्ट्रवाद पर अभी तक की मेरी चर्चा से यह स्पष्ट हो जायेगा कि इन देशों को केन्द्रित करके दो किस्म के द्वन्द्व उभरकर सामने आ रहे हैं :

एक : नव-स्वतंत्र राष्ट्रवाद व साम्राज्यवाद के बीच द्वन्द्व;

दो : नव-स्वतंत्र राष्ट्रवाद व समाजवाद के बीच द्वन्द्व।

कहने की जरूरत नहीं, कि नव-स्वाधीन राष्ट्रवादी देशों के बुर्जुआ वर्ग के अन्दर सर्वहारा क्रांति की भयग्रंथि दूसरे द्वन्द्व को पैदा कर रही है।

वैचारिक मतभेदों का समाधान करना

सोवियत संशोधनवाद के सवाल पर भी, हम विभिन्न अवसरों पर चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के अभिमत (stand) व दृष्टिकोण से सहमत नहीं हो सके। 12 पार्टी घोषणा (1957) और 81-पार्टी वक्तव्य (1960) दोनों ही वस्तुतः समझौता दस्तावेज के नमूने (specimens) हैं, क्योंकि क्रांतिकारी लाइन व संशोधनवादी लाइन को साथ-साथ जगह दी गयी है, मगर न सिर्फ सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी ने, बल्कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने भी इनकी बड़ी तारीफ की है। और क्योंकि इन दोनों दस्तावेजों में क्रांतिकारी व संशोधनवादी, दोनों लाइनें मौजूद हैं, इसलिए दोनों पक्षों ने अपने-अपने दावों के समर्थन में अंश उद्धृत करने के लिए उनका प्रयोग किया है। फलस्वरूप, न सिर्फ एक समरूप दृष्टिकोण व रुख विकसित नहीं हो सका, बल्कि हरेक पक्ष एक दूसरे को बदनाम करते हुए बुनियादी राजनीतिक लाइन से भटकाव का उस पर आरोप भी लगा सका। हमने उस समय जो भावी खतरे की चेतावनी दी थी, वह सही साबित हुई है। विडम्बना यह है कि जिस समय उन्होंने एक-दूसरे के खिलाफ निन्दा अभियान छेड़ा, उसी समय साथ-साथ दोनों पक्षों ने इन दोनों दस्तावेजों की तारीफ के पुल भी बांधे थे।

हरेक कॉमरेड को मालूम है कि कुछ खास समय तक, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के संशोधनवादी नेतृत्व के बारे में आलोचना के रूप में कुछ भी नहीं कहा था। बाद में,

उन्होंने यह प्रभाव डालने का प्रयास किया कि यह तो एकता के लिए जरूरी हो गया था। हम उनके साथ सहमत नहीं हो सके। हमने दर्शाया कि मार्क्सवादी बुनियादी उसूलों पर कभी भी समझौता नहीं कर सकते। अगर बुनियादी उसूलों पर समझौता किया गया, तो न सिर्फ उन उसूलों को तिलांजलि दे दी जायेगी, बल्कि उस एकता को भी अन्ततः बरकरार नहीं रखा जा सकेगा, जिसके लिए समझौता किया गया है। हरेक को पता है कि चीन व सोवियत संघ के बीच संबंध कितना ज्यादा कटु हो गया है। हमारा सुदृढ़ विश्वास है कि विश्व कम्युनिस्टों की एकता को पुख्ता बनाने के लिए, उस समय मूलभूत नतियों पर मतभेदों के बारे में एक तीव्र वैचारिक संघर्ष छेड़ना जरूरी था और इस संघर्ष के माध्यम से वैचारिक मतभेदों को दूर करना था। आज भी यही फर्ज है। इसका कारण यह है कि मूलभूत नीतियों पर लीपा-पोती या पैबन्द लगाने या समझौते के जरिये एकता को कभी कायम रखा ही नहीं जा सकता है। यदि, वे एक ओर, इन सवालों पर मतैक्य पर पहुंचने तक चर्चा, बातचीत, बहस-मुबाहिसे जारी रख सकते, और इसके साथ-साथ मुख्य शत्रु, साम्राज्यवाद के खिलाफ संयुक्त संघर्ष संचालित करते, तो उनके बीच वैचारिक मतभेदों के बावजूद, विभिन्न देशों के कम्युनिस्ट, साम्राज्यवाद के खिलाफ राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों के समर्थन में एक संयुक्त संघर्ष का नेतृत्व कर पाने में सक्षम होते। यदि उन्हें एकता-संघर्ष-एकता के इस उसूल की सही समझदारी होती, तो दोनों दायित्वों को एक साथ निभाने में कोई दिक्कत पेश नहीं आयी होती।

इस पक्ष की तरफ ध्यान आकर्षित करते हुए, विभिन्न देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों से हमने बार-बार अपील की है। 'अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के नेताओं से एक अपील' शीर्षक के अपने लेख में हमने यही अपील की थी। बड़े खेद की बात है कि किसी भी पार्टी ने हमारी अपील पर ध्यान देना जरूरी नहीं समझा। सिर्फ हाल ही में हम नोट कर रहे हैं कि चाहे जो भी कारण हो, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपना मनोभाव (attitude) बदला है। जब अलबानिया पार्टी ऑफ लेबर ने सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की

खुले-आम आलोचना की थी, तो चओ एन लाइ ने यह कहते हुए आपत्ति की कि ऐसी खुली आलोचना का सहारा नहीं लिया जाना चाहिए। हालांकि हम चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हो सके। अब हम देख पाते हैं कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी इन सवालों पर खुली बहस की नीति का अनुसरण कर रही है–न सिर्फ विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन की समस्याओं पर, बल्कि बहुत से राजनीतिक व सांस्कृतिक सवालों को केन्द्रित करके अपने निजी देश में भी जो मतभेद पैदा हो चुके हैं–उन्हें हल करने के लिए उन्होंने सांस्कृतिक क्रांति का रास्ता ग्रहण कर लिया है। यह सांस्कृतिक क्रांति इस बात का सबूत है कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने बहुत हद तक अपना पहले का रवैया (attitude) बदला है। अब वे न सिर्फ पार्टी-कैडरों को, बल्कि वर्ग व जन साधारण को शामिल करके बहस-मुबाहिसे (polemics) चला रहे हैं।

लिऊ शाओची की आलोचना के बारे में

लिऊ शाओची के बारे में, मैं इस बात से सहमत हूं कि वह घोर अवसरवादी बन गये थे। मगर नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट में उनके खिलाफ जिस प्रकार आरोप लगाये गये हैं उस तरीके पर कुछ नैतिक सवाल मुझे बेचैन करते हैं। मैं जानता हूं कि पार्टी नेतृत्व में बहुत ऊंचे पद पर प्रतिष्ठित कोई व्यक्ति भी किसी रोज पतित हो सकता है। मैं इस विचार का समर्थक नहीं हूं कि लिऊ शाओची जैसा कोई नेता पार्टी नेतृत्व में जिसका स्थान माओ त्से-तुंग के बाद था, वह कभी पतित नहीं हो सकता। उस प्रकार से सोचना तो अवैज्ञानिक और निश्चित रूप से गैर-मार्क्सवादी है। यही कारण है कि मैं आप को सूचित करता रहा हूं कि यह सोचना गलत होगा कि, क्योंकि किसी व्यक्ति ने एक दफा कम्युनिस्ट चरित्र अर्जित कर लिया, तो वह कभी पतित ही नहीं हो सकता। हम अपने अन्तिम दम तक एक कम्युनिस्ट बने रहेंगे, यह हमें अपने दैनन्दिन गतिविधियों के माध्यम से अवश्य साबित करना पड़ेगा। जिस तरह लिऊ शाओची को नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट में एक वर्ग द्रोही (renegade), एक संशोधनवादी के रूप में अपराधी ठहराया गया है और चीन के

ख्रुश्चेव के रूप में उस पर ठप्पा लगाया गया है, जो कुछ भी हो हमने उस पर आपत्ति नहीं की है। बल्कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी नेतृत्व द्वारा प्रस्तुत तथ्यों के आधार पर इस बात पर सहमत होना जरूरी है कि लिऊ शाओची की लाइन संशोधनवादी थी। पार्टी संगठन के सवालों, खुली बहस-मुबाहिसों, सांस्कृतिक क्रांति में मजदूरों एवं जनता के तमाम हिस्सों को शामिल करने के सवालों पर अथवा गवर्नमेन्ट के विभिन्न विभागों के साथ-साथ कला, साहित्य, संस्कृति एवं शिक्षा की भूमिका तथा साथ-साथ विशेष रूप से चीनी समाज में वर्ग संघर्ष को जारी रखने के महत्व पर एक ओर माओ त्से-तुंग व पार्टी का नेतृत्व तथा दूसरी ओर लिऊ शाओची के बीच मतभेदों से बिलकुल साफ जाहिर होता है कि लिऊ शाओची की लाइन संशोधनवादी है। हमें इसके बारे में कोई शक नहीं है। मगर सम्पूर्ण रूप से एक अलग पहलू से—कम्युनिस्ट नीति-नैतिकता व आचरण विधि की दृष्टि से मुझे कुछ मुद्दे उठाने हैं। केन्द्रीय कमेटी के या पार्टी के सर्वोच्च नेता के निर्णयों या विश्लेषणों की व्याख्या करने वाले पार्टी के नेताओं की बात ही लीजिए। पार्टी लाइन की चर्चा करते हुए लेख लिखते समय, क्या हरेक व्यक्ति ठीक-ठीक एवं सुनिर्दिष्ट रूप से विचार-बिन्दुओं को प्रस्तुत कर सकता है, जिनके द्वारा केन्द्रीय कमेटी के या पार्टी के सर्वोच्च नेता के विश्लेषणों, निर्णयों व चिंतन को सही रूप से अभिव्यक्त किया जा सके। स्पष्ट है कि नहीं, और इसीलिए यह सर्वथा संभव है कि पार्टी की मुख्य लाइन का समर्थन करते हुए उन निर्णयों, विश्लेषणों, या चिंतन पर जब वे चर्चा कर रहे या लेख लिख रहे हों, तो उनसे कुछ त्रुटियां हो जायें। अतः पार्टी का कोई नेता, मान लो एक समय का अत्यधिक विश्वस्त नेता अथवा बहुत ऊंचे दर्जे का कोई नेता बाद में किसी तरह या किसी कारण से भटक जाये विच्युत हो जाय और पार्टी के खिलाफ चला जाय तो उनके पूर्व के लेखों में उन दोष-कमियों का उल्लेख करके यह कहा जा सकता है कि उसने तो हमेशा ही पार्टी-विरोधी भूमिका निभाई है और बुर्जुआ वर्ग-स्वार्थ का ही प्रतिनिधित्व किया है तथा उनकी दोष एवं कमियां इसका ज्वलंत प्रमाण हैं। मुझे आश्चर्य होता है कि इस तरह कहने वाले कितने

ईमानदार व नैतिक हैं। इस रिपोर्ट में लिऊ शाओची के खिलाफ टिप्पणियों का अध्ययन करते समय इस बात ने मुझे परेशान कर दिया है। मैं एक अन्य बात पर गंभीर रूप से चिंतित हूं। जब तक लिन बियाओ नेतृत्व वैचारिक रूप से कमजोर न हो, तो उन्हें यह रास्ता अख्तियार क्यों करना पड़ता? यही तथ्य पार्टी के आम कार्यकर्ताओं के सामने उसे बेनकाब करने के लिए काफी होता कि यह तत्कालीन नेता अब पार्टी विरोधी हो गया है और पार्टी की बुनियादी राजनीतिक लाइन का ही विरोध करने की सीमा तक जा चुका है। यदि अतीत के नेता को जो पार्टी विरोधी हो गया है, इसके बावजूद बेनकाब नहीं किया जा सकता है या अतीत की उसकी छवि को ध्वस्त नहीं किया जा सके, तो क्या इसे झूठी कहानियां गढ़कर किया जा सकता है? वरना यह कहने की क्या तुक है कि वह तो शुरू से ही साम्राज्यवाद का एजेन्ट, हमेशा एक षड्यंत्रकारी, और सदा ही चालबाजी करता रहा है। यदि आलोचना की लाइन यह हो तो कैडर भी आलोचना के बुनियादी मुद्दे को समझने में समर्थ नहीं होंगे। यदि एक नेता की उस समय की कारगुजारियों के खिलाफ आलोचना को निर्देशित किया जाये, जब से उसका पतन होना शुरू होने लगा, खासकर जब वह प्रतिक्रांतिकारी होने लगा तो मेरी राय में उससे पार्टी के आम कार्यकर्ताओं की चेतना के स्तर को उन्नत करने में मदद मिलेगी। वरना समूची आलोचना की परिणति गाली-गलौज की सीमा तक गिरना लाजिमी है। तब भी उसे शुरू से ही एक षड्यंत्रकारी के रूप में चित्रित करना तो अनुचित और गलत है, जब वह पार्टी व क्रांतिकारी आन्दोलन के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ था। इसके अलावा, मैं एक बहुत ही जरूरी आम नीति को स्पष्ट रूप में पेश करना चाहता हूं। क्या हम उस हरेक व्यक्ति पर अविवेकपूर्ण (indiscriminately) तरीके से एक एजेन्ट होने का आरोप लगा सकते हैं, जो पार्टी-विरोधी हो गया है? कोई एक कॉमरेड पार्टी लाइन की गलत समझदारी की वजह से भी पार्टी विरोधी हो सकता है। चेतना के अपने निम्न स्तर के कारण या बुर्जुआ विचारों के प्रभाव के अन्तर्गत भ्रान्त होने के चलते, एक ईमानदार कॉमरेड भी

अपने क्रांतिकारी गुणों को पूरी तरह नष्ट कर सकता है और घोर प्रतिक्रियावादी हो सकता है, और इस प्रकार एक एजेन्ट की तरह ही नुकसान पहुंचा सकता है। मगर इसके बावजूद क्या हम उसी पैमाने से, जिसे हम एक सुपरिचित (confirmed) एजेन्ट के मामले में लागू करते हैं, उसको भी एक एजेन्ट के तौर पर विचार कर जांच सकते हैं, जो वस्तुतः एक एजेन्ट नहीं है? क्या यह इस विषय में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की शिक्षाओं के विपरीत नहीं है?

एक अच्छे कम्युनिस्ट कैसे बने?

मैंने लिऊ शाओची की पुस्तक, 'अन्दरूनी पार्टी संघर्ष' (Inner party struggle) में दोष-कमियों का उल्लेख पहले ही किया है। अब उनकी एक अन्य पुस्तक 'अच्छे कम्युनिस्ट कैसे बनें' (How To Be A Good Communist)* के बारे में लिन बियाओ ने अपनी रिपोर्ट में लिऊ शाओची के खिलाफ एक अजीब आरोप लगाया है। उसने जापानी साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक भी शब्द न कहने का लिऊ शाओची पर आरोप लगाया है। मैं इस इल्जाम पर वस्तुतः आश्चर्यचकित रह गया हूं। 'एक अच्छे कम्युनिस्ट कैसे बनें' के साथ जापानी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष का क्या वास्ता है? अगर पुस्तक जापानी साम्राज्यवाद से लड़ने के तरीके के बारे में होती, तो यह बात अलग थी। लेकिन जब अच्छे कम्युनिस्ट के रूप में अपने आप को विकसित करने के लिए संघर्ष को संचालित करने के तरीके का सवाल है, तो जापानी साम्राज्यवाद से लड़ने का सवाल कैसे आता है? कुदरतन, यदि वे सोचते हैं कि हर कोई व्यक्ति सिर्फ कुछ जन व वर्ग संघर्ष संचालित करके ही एक कम्युनिस्ट बनता है, तो अलग बात है। सिर्फ जन व वर्ग संघर्षों में हिस्सा लेकर ही अगर वस्तुतः कम्युनिस्ट बनना संभव होता, तो यह कैसे है कि रूस में अक्तूबर क्रांति मे जिन लोगों ने भारी संख्या में हिस्सा लिया था, उनमें से आज बहुत से संशोधनवादी हो गये?

* 'अच्छे कम्युनिस्ट कैसे बने' पुस्तक में जो लिऊ शाओची ने लिखी है, नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट में जिस चीज का आत्म-साधना (self cultivation) के रूप में उल्लेख किया गया है, उसी चीज की उसमें चर्चा की गयी है।

वियतनाम के जंगलों में अमेरिकी साम्राज्यवाद के खिलाफ सशस्त्र लड़ाइयों में बहादुरीपूर्वक लड़ने वालों में से कितने लोगों ने कम्युनिस्ट चरित्र हासिल किया है? असली बिन्दु यह है कि वे लोग जो सशस्त्र संघर्षों में हिस्सा लेते हैं, और वीरतापूर्ण लड़ाइयां लड़ते हैं, यदि साथ-साथ अपनी संस्कृति व नैतिकताओं को उन्नत करने के लिए अविराम कठोर संघर्ष जारी न रखें तो शांति व स्थायित्व के बाद की अवधि में उन्हीं लोगों को क्रांतिकारियों के रूप में पहचानना मुश्किल हो सकता है। इतिहास ऐसे पक्के हिमायतियों (partisans) के उदाहरणों से भरा पड़ा है, जिन्होंने कभी अपने प्राणों को दांव पर लगा कर लड़ाई की थी, वे घोर अहंवादिता एवं व्यक्तिवादिता के शिकार हो गये। यह एक पहलू है। फिर, यदि कोई सोचता है कि वह जन-साधारण के दैनन्दिन संघर्षों से अलग-थलग रहकर, सिर्फ कम्युनिस्ट तौर-तरीकों (norms) एवं आचरण विधि का अनुसरण करके ही कम्युनिस्ट बन सकता है, तो वह थोथी आचरण सर्वस्ववादिता में ही लिप्त हो जायेगा।

सामाजिक स्वार्थ के साथ व्यक्तिगत स्वार्थ का एकात्मीकरण

अत: यह सच है कि हर किसी व्यक्ति के लिए जो एक कम्युनिस्ट बनना चाहता है, उसे जीवन पर्यन्त संघर्ष में जुटे रहना जरूरी है। हरेक कम्युनिस्ट को सक्रिय एवं प्रत्यक्ष रूप में संघर्ष में अवश्य भाग लेना चाहिए, संघर्ष चाहे जापानी साम्राज्यवाद के विरुद्ध हो, अमेरिकी साम्राज्यवाद के विरुद्ध अथवा अपने ही देश की प्रतिक्रियावादी शक्तियों के विरुद्ध क्यों न हो? नि:संदेह ऐसा ही है। लेकिन इसका क्या अर्थ है कि कोई व्यक्ति सिर्फ राजनीतिक संघर्षों में शामिल होने के कारण ही स्वत: कम्युनिस्ट बन जाता है? क्या तथ्य यह नहीं है कि सिर्फ दैनन्दिन राजनीतिक संघर्ष के साथ सर्वहारा संस्कृति अर्जित करने के संग्राम को समन्वित करके और इस प्रक्रिया में धीरे-धीरे सर्वहारा संस्कृति अर्जित करके ही, कोई कम्युनिस्ट बन सकता है। लिऊ शाओची की पुस्तक के बारे में हमारी आलोचना है कि उन्होंने इन महत्वपूर्ण सवालों पर चर्चा नहीं की है। सिर्फ इतना ही नहीं; उदाहरण के लिए मान लीजिए कि इंग्लैंड, अमेरिका जैसे

औद्योगिक रूप से उन्नत देश, यहां तक कि भारत भी जहां व्यक्तिवाद की समस्या ने विकराल रूप ले लिया है, जहां स्वतंत्रता का बुर्जुआ बोध सुविधा में तब्दील हो गया है–इन देशों में कम्युनिस्टों का क्या स्टैन्डर्ड होना चाहिए? यह चर्चा की जानी चाहिए थी कि भारत जैसे देशों में कम्युनिस्ट चरित्र के उसी स्टैण्डर्ड के साथ क्या व्यक्तिवाद से लड़ना संभव है जहां उसने एक विकराल रूप अख्तियार कर लिया और अत्यधिक जटिल समस्या के रूप में प्रकट हो गया है, जिस कम्युनिस्ट चरित्र के स्टैण्डर्ड के साथ रूस या चीन में क्रांति सम्पन्न करना संभव था, जहां बुर्जुआ-बोध क्रांति से पहले के दौर में पूरी तरह नि:शेषित (exhausted) नहीं हुआ था फिर भी यह सच है कि लिऊ शाओची ने व्यक्तिगत स्वार्थ को पार्टी-स्वार्थ के प्रति समर्पित करने का सवाल उठाया है। जैसा कि मैं समझता हूं कि जिस तरीके से उन्होंने वह सवाल उठाया वह है : सर्वहारा की मुक्ति का सवाल समूची मानव जाति और सभी उत्पीड़ित लोगों की मुक्ति के साथ ओत-प्रोत रूप से जुड़ा हुआ है; और क्योंकि कम्युनिस्ट पार्टी सर्वहारा वर्ग-स्वार्थ का प्रतिनिधित्व करती है, इसलिए हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को पार्टी-स्वार्थ के प्रति समर्पण के माध्यम से मुक्ति हासिल करने की इस प्रक्रिया को तेज कर सकते हैं। लेकिन यह समझ लेना चाहिए कि व्यक्तिगत स्वार्थ को पार्टी-स्वार्थ या सामाजिक स्वार्थ के प्रति समर्पित करने का विचार तो बुनियादी तौर पर बुर्जुआ मानवतावादी अवधारणा ही है। हमने एक अन्य जगह पर दिखाया है* कि व्यक्तिगत स्वार्थ को सामाजिक स्वार्थ के प्रति समर्पित करना और व्यक्तिगत स्वार्थ का सामाजिक स्वार्थ के साथ विलय अथवा एकात्मीकरण (identification) एक ही चीज नहीं है। वैयक्तिक स्वार्थ को समर्पित करने का प्रश्न वैयक्तिक स्वार्थ के अलग अस्तित्व को दर्शाता है। लेकिन जब वैयक्तिक स्वार्थ का सामाजिक स्वार्थ के साथ एकात्मीकरण अथवा विलय हो जाता है तो वह अलग से सत्ता (entity) के रूप में अस्तित्व में नहीं रहता।

लेकिन लिन बियाओ ने लिऊ शाओची के अवलोकन (observation) को विकृत कर दिया है। ''निजी (private) और

* इस पुस्तक में शामिल, चीन की सांस्कृतिक क्रांति में।

सार्वजनिक (public) स्वार्थों के विलय करने'' के विषय में लिऊ के शब्दों की खिल्ली उड़ाते हुए उसने कहा है कि इसका अर्थ तो ''थोड़ा घाटा खाकर ज्यादा लाभ उठाना'' हुआ। मेरा अभिप्राय यह है कि यदि लिऊ के सिद्धांत (theory) की ऐसी नियति हो जाय तो यह सत्ता (power) के दुरुपयोग के समान हो जाता है। उस हालत में उस दुरुपयोग के खिलाफ संग्राम चलाना होगा और सिद्धांत में कोई अपर्याप्तता अथवा कमी है तो उसे यह दिखाई जानी चाहिए। लेकिन इसके लिए सिद्धांत को विकृत क्यों किया जाये?

आप सब जानते हैं कि हमारी पार्टी का इन सब सवालों पर एक निश्चित अभिमत (stand) है। हम सोचते हैं कि कम्युनिस्ट चरित्र हासिल करने का संग्राम व्यवहार में व्यक्तिगत स्वार्थ का सामाजिक स्वार्थ के साथ एकात्मीकरण के लिए संग्राम है। यह नीति-नैतिकता के क्षेत्र में एक संग्राम है। यहां परीक्षा की कसौटी यह है—जो कुछ भी मैं करता हूं उसमें रुचि और संस्कृति में मैं वस्तुतः कहां तक व्यक्तिवाद से मुक्त हुआ हूं। इस व्यक्तिवाद से मुक्ति का चरित्र क्या है, क्या यह नीति-नैतिकता के स्तर पर प्रतिफलित हो रहा है। ये सब बातें बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि जैसा कि हम समझते हैं कि सिर्फ वही जिसकी मूल्यबोधों की धारणा व्यक्ति स्वार्थ से मुक्त हुई है, जो व्यक्तिगत स्वार्थ को पार्टी व सामाजिक स्वार्थ के साथ एकात्मीकरण करने के संग्राम में अपने आपको बगैर दुविधा के तथा आनन्द के साथ संलग्न कर सकता है, तभी कहा जा सकता है कि उसने ही कम्युनिस्ट चरित्र हासिल कर लिया है अतः यह जानना जरूरी है कि हम अपने आचरण, व्यवहार एवं क्रिया-कलापों में हर क्षण उसी प्रकार दैनन्दिन संग्रामों में भी संस्कृति व नीति-नैतिकता के उच्च मानदण्ड को प्रतिबिम्बित करते हैं, कि नहीं, जिस तरह दुश्मन के साथ भीषण संग्राम के दौरान करते हैं। अथवा हम जरा सा भी मौका हाथ लगते ही अपने आपको जाने-अनजाने में अच्छा जताने या विज्ञापित करने, दूसरे को तुच्छ एवं हेय सिद्ध करने तथा छोटी-छोटी बातों पर आपे से बाहर होने में लिप्त रहते हैं या नहीं। इन सब बातों का सूक्ष्म रूप से अध्ययन करना चाहिए। ध्यानपूर्वक जांच-परख से पता चलेगा कि

चाहे जो भी घटनाएं हों, ये सिर्फ तभी घटित होती हैं, जब व्यक्तिवाद या अहं-बोध हम पर हावी हो जाता है। मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि व्यक्तिवाद एवं अहंबोध के इस प्रभाव से अपने आप को हम कहां तक मुक्त कर पाये हैं–यह इस बात से नहीं जांचा जा सकता है कि हम इस पर कितने सुन्दर ढंग से अपने भाषणों में चर्चा या निन्दा कर सकते हैं। इसे तो दैनन्दिन जीवन में हम संस्कृति का जो मानदण्ड प्रतिफलित करते हैं, उसी से जांचना-परखना अनिवार्य है।

दूसरी दृष्टि से भी व्यक्तिवाद के खिलाफ यह संघर्ष अत्यंत महत्वपूर्ण है। पूंजीवादी देशों की बात तो दूर, मैंने पहले ही उन देशों में भी व्यक्तिवाद के आविर्भाव की संभावना को दिखाया है, जहां समाजवादी क्रांति सम्पन्न की जा चुकी है। 'चीन की सांस्कृतिक क्रांति' पर चर्चा में मैंने इस परिघटना को ''समाजवादी व्यक्तिवाद'' की संज्ञा दी थी। आप इसे भलीभांति ध्यानपूर्वक पढ़ चुके होंगे। यहां मुझे मात्र एक बिन्दु उल्लेख करना है। सांस्कृतिक क्रांति के दौरान चीनी कम्युनिस्ट पार्टी नेतृत्व ने व्यक्तिवाद की इस समस्या पर कोई विश्लेषण प्रस्तुत नहीं किया, जो समाजवादी देशों में शांति व स्थायित्व के समयों में समाजवादी व्यक्तिवाद के रूप में अपना मनहूस सिर बखूबी उठा सकती है। चीन के लोगों की मानसिकता पर आर्थिक स्थायित्व एवं आर्थिक लाभों के बढ़ते अवसरों से पड़ने वाले संभावित प्रभाव के बारे में कोई भी निश्चित विश्लेषण नहीं प्रस्तुत किया गया। तब सांस्कृतिक क्रांति के उद्देश्य क्या थे? क्या इसका उद्देश्य सिर्फ राजनीतिक विरोधियों से संघर्ष के लिए दिशा निर्देश ही प्रदान करना था? यदि यही समझदारी है, तो यह वस्तुतः सांस्कृतिक क्रांति के महत्व को अमल में गौण कर देना ही होता है।

सर्वहारा संस्कृति हासिल करने के बारे में

हम जानते हैं कि राजनीतिक व आर्थिक परिवर्तनों के बाद संस्कृति के क्षेत्र में रूपान्तरण अपने आप या स्वतःस्फूर्त ढंग से नहीं हो जाता। मैंने बार-बार एक बात कही है कि जब लेनिन ने एक उच्चतर राजनीतिक चेतना के उन्नत स्तर को हासिल करने के

बारे में कहा, तो उनके उस कथन में सांस्कृतिक मानदंड निहित था। उदाहरणस्वरूप एक बार उन्होंने कहा, ''समाजवाद का विचार बाहर से आता है'' जिसका तात्पर्य है कि समाजवादी विचार मजदूरों के ट्रेड यूनियन-आन्दोलन के अन्दर से ही स्वत:स्फूर्त ढंग से नहीं विकसित होते हैं। अगर हम इस बात को सही मायने में समझें, तो हम यह भी कह सकते हैं कि 'सर्वहारा संस्कृति भी बाहर से आती है।' इस तरह यह सर्वहारा के जीवन से अपने-आप पैदा नहीं हो जाती है। यह आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं नीति-नैतिक यानी जीवन के सभी पहलुओं को समेटते हुए एक तीव्र, भीषण संग्राम से आती है। इसका अर्थ है कि एक मजदूर जन्म से ही स्वत: सर्वहारा संस्कृति हासिल नहीं कर लेता। मौजूदा समाज में वह जो जीवन व्यतीत करता है, वह सर्वहारा संस्कृति हासिल करने में सहायक नहीं है। सर्वहारा संस्कृति आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन के सभी पहलुओं को समेटते हुए एक तीव्र व कष्टकर वैचारिक सांस्कृतिक संग्राम के जरिये ही पैदा होती है। मैं और भी ज्यादा व्याख्या करके समझाता हूं। हम अनिवार्य रूप से इसलिए यह नहीं स्वीकार कर सकते कि चूंकि वह एक आदमी मजदूर है, इसलिए वह एक कम्युनिस्ट है और उसने सर्वहारा संस्कृति हासिल कर ली है। हम अभिजात श्रमिकों यानी लेबर अरिस्टोक्रेटों को भी जानते हैं। यदि जन्म से ही एक मजदूर स्वत: ही सर्वहारा संस्कृति हासिल कर पाता तो यह कैसे हो सका? जब तक एक मजदूर वर्ग सचेत नहीं होता, क्रांतिकारी राजनीति व उच्चतर सर्वहारा संस्कृति के आधार पर वर्ग संघर्षों का निर्माण नहीं करता और रोजाना के संघर्षों में इसकी साधना (cultivate) नहीं करता, तब तक उसके एक कम्युनिस्ट बनने की प्रक्रिया तक भी शुरू नहीं होती है। इसका कारण यह है कि आम तौर पर अपने जीवन और खासकर परिवेश की प्रतिकूल परिस्थितियों की वजह से, वह एक घिनौनी संस्कृति हासिल कर लेता है। वह सामंती संस्कृति, मध्यम वर्गीय मानसिकता द्वारा अथवा निकृष्ट भौतिकवाद द्वारा अवश्य ही प्रभावित हो जाता है। 'भारत में एसयूसीआई ही एकमात्र कम्युनिस्ट पार्टी क्यों'* में इन बिन्दुओं पर मैंने चर्चा की है।

समाजवादी समाज में राजसत्ता कायम रहती है

मैं एक दूसरे पहलू से भी व्यक्तिगत स्वार्थ के सामाजिक स्वार्थ के साथ एकात्मीकरण के महत्व को जोर देकर पेश करना चाहता हूं। समाजवादी व्यवस्था में बुर्जुआ जगत ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अस्तित्व पर बार-बार सवालिया निशान लगाया है। इसका साफ-साफ जवाब दिया जाना चाहिए। हम जानते हैं कि राजसत्ता के अस्तित्व का मतलब ही है कि दमन-उत्पीड़न का अस्तित्व है क्योंकि राजसत्ता एक वर्ग के हाथों में दूसरे वर्गों के खिलाफ दमन-उत्पीड़न का औजार होता है। अतः इस बात पर सभी मार्क्सवादी-लेनिनवादी सहमत हैं कि सिर्फ कम्युनिस्ट समाज में राज्य के विलोप होने के साथ ही राजसत्ता का दमन-उत्पीड़न बंद होगा, व्यक्ति समस्त सामाजिक दमन-उत्पीड़न से मुक्त होगा और मानव समाज में व्यक्ति स्वतंत्रता का सर्वोच्च रूप हासिल करेगा। मेरे विचार से इस अधिकतम हासिल की जा सकने वाली स्वतंत्रता को हासिल करने का सही तरीका व्यक्तिगत स्वार्थ का सामाजिक स्वार्थ के साथ एकात्मीकरण के लिए सही तरीके से संग्राम चलाना ही है। इसका कारण है कि आर्थिक क्षेत्र में वर्गों के अन्य पहलू जानने के बाद भी, जब आर्थिक श्रेणी के रूप में वर्ग का अस्तित्व नहीं रहेगा, तब भी व्यक्तिगत एवं सामाजिक स्वार्थ के बीच में विरोधात्मक द्वन्द्व के रूप में ऊपरी ढांचे में उत्पादन व वितरण को केन्द्र करके संघर्ष प्रतिबिम्बित होता रहेगा। नये आर्थिक आधार पर पैदा होने वाले नये ऊपरी ढांचे का पुराने ऊपरी ढांचे के अवशेषों (hangovers) के साथ संघर्ष होना अवश्यंभावी है। इस प्रकार ऊपरी ढांचे के क्षेत्र में, व्यक्तिगत स्वार्थ व सामाजिक स्वार्थों के बीच विराधात्मक द्वन्द्व आगे भी जारी रहेगा और इस द्वन्द्व के प्रतिफलन के रूप में राजसत्ता का अस्तित्व भी बरकरार रहेगा। दूसरे शब्दों में, जितने अरसे तक ऊपरी ढांचे में वर्ग विभाजित समाज से मौजूद अवशेषों के रूप में पुराने विचारों व मूल्यबोधों के खिलाफ नये विचारों व मूल्यबोधों का संघर्ष जारी रहेगा, तब तक राजसत्ता का

---

* सर्वप्रथम बांग्ला में 1970 में प्रकाशित। 1976 में इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रोलेटेरियन एरा में प्रकाशित तथा बाद में भारत में सांस्कृतिक आन्दोलन और हमारा कर्तव्य में भी चर्चा की गयी। (अंग्रेजी अनुवाद 1973 में प्रकाशित।)

अस्तित्व रहेगा। इसलिए उत्पादक शक्तियों और उत्पादन संबंधों के बीच न हल होने वाले द्वन्द्व, जिसके प्रतिफलन के रूप में राजसत्ता मौजूद है, पूंजीवादी राज्य के खात्मे के साथ खत्म नहीं होगा और व्यक्तिगत स्वार्थ व सामाजिक स्वार्थ के बीच विरोधात्मक द्वन्द्व भी अपने आप हल नहीं हो जायेगा। राजसत्ता के विलोप होने की प्रक्रिया को तेज करने के लिए व्यक्तिगत और सामाजिक स्वार्थों के बीच विरोधात्मक द्वन्द्व को मिलनात्मक द्वन्द्व में रूपान्तरित करना जरूरी है। और यह काम सिर्फ तभी सम्पन्न किया जा सकता है, जब ये दोनों स्वार्थ एक और अभिन्न हो जायें। इसके बगैर वर्ग के रूप में बुर्जुआ वर्ग से समाज को निजात दिलाना तथा उसे बुर्जुआ विचारों, मूल्यबोधों एवं चिंतनों से मुक्त करना असंभव है।

इन सब सवालों को हल करने में दिशा-निर्देशों को प्रस्तुत करते हुए एक सर्वांगीण दार्शनिक विश्लेषण करने की लिऊ शाओची से शायद आशा नहीं की जा सकती थी। लेकिन हमें यह माओ त्से-तुंग से भी तो नहीं मिला। सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत वर्ग संघर्ष को जारी रखने पर तो सही तरीके से जोर दिया गया है, लेकिन क्या इसका अर्थ यह है कि यह संघर्ष अनन्त काल तक जारी रहेगा? इस संघर्ष को क्या हमेशा जारी रखना पड़ेगा या क्या इसे वर्गहीन समाज में पदार्पण करने के चरम बिन्दु या परिणति तक करते जाना होगा? बात यह नहीं है कि वे इस संघर्ष को हमेशा ही जारी रखने की सोच रहे हों, लेकिन उन्होंने ठोस रूप में यह नहीं दिखाया है कि वर्ग संघर्ष के खात्मे की दिशा में, विशेष रूप से वर्तमान चरण में, किस तरीके से आगे बढ़ेंगे? इसका कोई इशारा तक नहीं दिया गया है। लेकिन उन लोगों द्वारा इस कार्यभार को सम्पन्न करना जरूरी है, जो आज इस संग्राम में प्रत्यक्ष रूप से शामिल हैं, क्या ऐसा नहीं है? सच कहें, तो जहां तक हमें जानकारी है कि हमारी पार्टी के सिवाय किसी भी अन्य कम्युनिस्ट पार्टी ने इन सवालों पर दिशा-निर्देश नहीं दिये हैं। हम अत्यंत विनम्रता के साथ यह दावा कर सकते हैं।

नौवीं कांग्रेस की रिपोर्ट में लिऊ शाओची के खिलाफ अलबत्ता अप्रत्यक्ष रूप से एक अन्य आरोप लगाया गया है। ठीक क्रांति के

बाद, जब चीन में उद्योगों में निवेश किये जाने के लिए पूंजी की जबरदस्त कमी थी, तब कुछ प्राइवेट उद्यमियों को समाजवादी राज्य के नियंत्रण में अल्प मुनाफे के आधार पर निवेश की अनुमति दे दी गयी थी। कुछ पूंजीपतियों ने इस शर्त को मान लिया और हांगकांग में स्थानान्तरण करना स्थगित कर दिया। अब लिन बियाओ लिऊ शाओची पर आरोप लगा रहे हैं कि उन्होंने पूंजीवादी व्यवस्था पर शोषणमूलक होने का ठप्पा लगाने के बावजूद उसे प्रगतिशील के रूप में पेश किया तथा मजदूरों को पूंजीपतियों को सहयोग देने के लिए प्रेरित किया। यह भी आरोप लगाया गया है कि लिऊ ने पूंजीपतियों को मुनाफा कमाने की अनुमति देने के लिए मजदूरों से अनुरोध किया था।

मैं एक बुनियादी बात पर थोड़ी चर्चा करना चाहता हूं। लगभग उसी समय मुझे चीन जाने का अवसर मिला था। मैंने पाया कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के बहुत से नेता लोग समाजीकृत सेक्टर के कन्ट्रोल के तहत कुछ पूंजीपतियों को दी गयी निजी निवेश की सीमा को 'नियंत्रित पूंजीवाद' के रूप में वर्णित किया करते थे। मैं प्रस्तुति के इस तरीके को गलत मानता हूं, क्योंकि इससे हमारे देश में भी बहुत ज्यादा भ्रान्ति पैदा हुई है। सीपीआई(एम) के सिद्धांतकार बी.टी. रणदिवे ने भी टिप्पणी की है कि माओ त्से-तुंग चीन में पूंजीवाद को पुनर्स्थापित करना चाहते हैं, क्योंकि वे अभी भी पूंजीवाद को प्रगतिशील मानते हैं। बाद में, हालांकि रणदिवे ने अपनी गलती स्वीकार कर ली। इसे नियंत्रित पूंजीवाद कहना मैं क्यों गलत मानता हूं इसकी व्याख्या कर रहा हूं। पूंजीवाद से हमारा अभिप्राय एक विशेष उत्पादन संबंध व उत्पादन के उद्देश्य के साथ एक विशेष आर्थिक व्यवस्था से है। अत: क्योंकि चीन में क्रांति ने उत्पादन संबंध व उत्पादन के उद्देश्य को आमूल-चूल बदल दिया था, तो वहां नियंत्रित रूप में भी पूंजीवाद कैसे हो सकता है? किताबी एवं पंडिताऊ तरीके से मार्क्सवादी ग्रंथों (classics) को तोते की तरह शब्दों को इस्तेमाल करने की आदत के चलते ही ऐसी भ्रान्ति पैदा हुई है। असल में इस व्यवस्था को किसी भी तरह पूंजीवाद की संज्ञा नहीं दी जा सकती है, यहां तक कि नियंत्रित मायनों में भी

नहीं। इसे नयी जनवादी अर्थव्यवस्था की संज्ञा दी जानी चाहिए थी। संक्षेप में, यही वे नैतिक सिद्धांत हैं, जिन्हें मेरे विचार से रिपोर्ट में लिऊ शाओची की समालोचना करने के मामले में नैतिकता के जिन पहलुओं का ख्याल रखना चाहिए था। लेकिन लिऊ शाओची के सवालों के प्रति रिपोर्ट में दृष्टिकोण की अपनी समूची आलोचना के बावजूद मुझे इस बात में तनिक भी शक नहीं है कि लिऊ शाओची घोर संशोधनवादी बन गये थे।

राजनीतिक चेतना की भूमिका

अब राजनीतिक चेतना के सवाल पर लौटा जाये। जब हम किसी व्यक्ति को राजनीतिक रूप से सचेत कहते हैं तो उसका वस्तुतः क्या तात्पर्य निकलता है? आमतौर पर उन्हें ही राजनीतिक रूप से सचेत माना जाता है जो सिद्धांतों पर चर्चा करते हैं, सैद्धांतिक चर्चाओं में जुटे रहते हैं और पूरी तरह अपने को सूचनाओं से लैस रखते हैं, भारी मात्रा में मोटी-मोटी पुस्तकें लिख सकते हैं, फटाफट प्रसंग एवं उद्धरण पेश कर देते हैं, विषयों पर घंटों भाषण दे सकते हैं। लेकिन यह गलत है। सबसे पहले, सूचनापरक ज्ञान व वास्तविक ज्ञान एक ही चीज नहीं होते हैं। दूसरे, ये गुण किसी को स्वतः ही राजनीतिक रूप से सचेत नहीं बना देते हैं। सिर्फ जब कोई व्यक्ति रुचि व संस्कृति का उच्च स्तर कायम रखने के लिए संघर्ष करता है, उसे राजनीतिक रूप से सचेत कहा जा सकता है। अपनी पार्टी के निजी अनुभव से भी, मैं कह सकता हूं कि ऐसे भी कॉमरेड हैं जो राजनीतिक सूचना से अच्छी तरह लैस हैं, लेकिन दूसरे ऐसे भी कॉमरेड मौजूद हैं जो बहुत ही ज्यादा पार्टी दृष्टिकोण, पार्टी स्वार्थ, व पार्टी एकात्मीकरण के सवालों पर चौकस, सचेत और विकसित हैं। अतः सिर्फ राजनीतिक सूचना से लैस एक कॉमरेड की उस कॉमरेड के साथ तुलना करना गलत है, जिसने कम्युनिस्ट चरित्र हासिल कर लिया है।

किन्तु इससे आप को यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि राजनीतिक चेतना अर्जित करना और एक उच्चतर सांस्कृतिक स्तर

हासिल करना–दो अलहदा संघर्ष हैं। बात ऐसी नहीं है। राजनीतिक चेतना में विभिन्न मुद्दों की सूक्ष्म रूप से जांच-परख करने की क्षमता भी निहित है। अत: यह अवश्य ही स्वीकार करना चाहिए कि जो परिवेश व प्रासंगिक मुद्दों के साथ विभिन्न समस्याओं व जटिल मामलों को समन्वित करके इनका विश्लेषण कर सकता है, उस व्यक्ति ने कम से कम कुछ सीमा तक तो सर्वहारा संस्कृति हासिल कर ही ली है। लेकिन सिर्फ क्योंकि दोनों गुण घनिष्ठ रूप से अंत: संबंधित हैं, इसलिए यह कहना सही नहीं होगा कि बौद्धिक क्षमता (intellectual aptitude) की कोई सापेक्ष स्वाधीनता नहीं है। ऐसी भी घटना घट सकती है कि सर्वहारा आन्दोलन में शामिल होने और अपनी बौद्धिक अनुकूलनशीलता के बूते पर कुछ सूझ-बूझ दिखाने के बावजूद एक आदमी नाना तरह की कमजोरियों व सनकों का शिकार हो सकता है, जो अपने क्रम में उसके भावी विकास में बाधा डाल सकती हैं।

इसके अतिरिक्त, यह भी हो सकता है कि राजनीतिक व सांगठनिक विशिष्ट योग्यता वाला एक व्यक्ति जो ज्ञान-विज्ञान की लगभग सभी शाखाओं में माहिर है, ज्ञान के किसी विशेष क्षेत्र में उतना ही लैस न भी हो। उदाहरण के लिए लेनिन ने कलारा जेटकिन को बताया था कि यौन व मनोविज्ञान के क्षेत्र में उनका ज्ञान बिलकुल सीमित है। उन्होंने कहा कि वे उन क्षेत्रों से भली-भांति अवगत नहीं हैं और कहा कि संबंधित समस्याओं पर चर्चा करने के लिए जरूरी जीवन के उन पक्षों का उनको सामग्रिक ज्ञान नहीं है और यह कि वह इन पर बहुत ज्यादा समय देने में सक्षम नहीं हुए हैं। इसलिए लेनिन ने इन मुद्दों पर दार्शनिक पहलू से सिर्फ कुछ आम सुझाव दिए थे। उन्होंने विज्ञान की इन शाखाओं को और ज्यादा विकसित करने की बात कही थी, क्योंकि वे एक बहुत ही उच्च संस्कृति से लैस एक महान पुरुष थे। इसलिए लेनिन के पास ऐसा कहने के लिए विनम्रता का कोई अभाव नहीं था। यह भी हो सकता है कि जब कोई एक नेता दूसरे सभी नेताओं से राजनीतिक सूझ-बूझ, सांगठनिक योग्यता और बौद्धिक क्षमता में बहुत आगे निकल चुका हो, वह दूसरों से बेजोड़ हो, फिर

भी दूसरा नेता जो इन सभी पक्षों में सापेक्ष रूप से पीछे है, विज्ञान की किसी शाखा में अधिक ज्ञान हासिल कर चुका हो।

हमारी पार्टी द्वारा किये गए कुछ सैद्धांतिक विश्लेषण

अत: एक सर्वांगीण विज्ञान के रूप में मार्क्सवाद को विकसित व समृद्ध करना हमारा एक जरूरी फर्ज बन गया है ताकि मार्क्सवाद की रोशनी में मौजूदा विश्व में जीवन व समाज के सामने विद्यमान नित नयी समस्याओं का सटीक विश्लेषण करना और इस आधार पर उनको हल करना संभव हो सके। वर्तमान कम्युनिस्ट आन्दोलन के सामने विद्यमान सवालों पर न तो मार्क्स विचार-विश्लेषण कर सके और न ही लेनिन ऐसा कर सके थे, क्योंकि उनका तो क्रांति के कुछ वर्ष बाद ही देहान्त हो गया था। लेकिन जो लोग इन सवालों से सीधे जुड़े हुए हैं, वे भी इनका कोई विश्लेषण पेश नहीं कर सके। फिलहाल यह अत्यधिक जरूरी है। मेरा दोहराने का तो कोई इरादा नहीं है, लेकिन फिर भी इस तथ्य की ओर आप का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं कि एकमात्र हमारी पार्टी ने ही यह दर्शाया है कि वर्तमान विश्व में व्यक्तिवाद की विशेष प्रकृति, चरित्र व विशिष्टताओं के मद्देनजर व्यक्तिगत स्वार्थ का क्रांति व पार्टी के स्वार्थ के प्रति नि:शर्त समर्पण को ही कम्युनिस्ट चरित्र का वांछित स्तर नहीं माना जा सकता; बल्कि एक उच्च स्तर का कम्युनिस्ट बनने के लिए, व्यक्ति के लिए अपने आप को क्रांति व पार्टी के उद्देश्य (cause) के साथ एकाकार करना जरूरी है; समाजवाद के अन्तर्गत भी व्यक्तिवाद अपना मनहूस सिर समाजवादी व्यक्तिवाद के रूप में उठा सकता है। समाजवादी व्यवस्था में व्यक्तिगत स्वार्थ व सामाजिक स्वार्थ के बीच विरोधात्मक द्वन्द्व के प्रतिफल के रूप में राजसत्ता कायम रहेगी और राजसत्ता के विलोप होने का सवाल इस विरोधात्मक द्वन्द्व को मिलनात्मक द्वन्द्व में रूपान्तरित करने के सवाल के साथ ओत प्रोत रूप से जुड़ा हुआ है; मजदूर वर्ग की पार्टी के सामूहिक नेतृत्व व बुर्जुआ व पेटी बुर्जुआ पार्टी के व्यक्तिगत नेतृत्व के बीच जमीन-आसमान का फर्क है। मजदूर वर्ग की पार्टी में सामूहिक नेतृत्व को सिर्फ एक नेता के माध्यम से उसके

व्यक्तिकरण के द्वारा ही प्रतिष्ठित किया जा सकता है। मार्क्सवाद में ऑथोरिटी की अवधारणा गुरुवाद (authoritarianism) से सर्वथा भिन्न है। यह केवल हमारी पार्टी ही है जिसने इन सवालों पर अत्यंत विशद चर्चाएं की हैं। विश्व की अन्य कम्युनिस्ट पार्टियों ने इन समस्याओं को छुआ तक नहीं है। कम से कम हमें तो इसका कोई भी सबूत नजर नहीं आया है। उनमें से किसी भी पार्टी ने नव-स्वाधीनता प्राप्त नवोदित राष्ट्रवाद की परिघटना या एक ओर साम्राज्यवादी देशों के साथ और दूसरी ओर समाजवादी देशों के साथ उसके द्वन्द्व की प्रकृति का विश्लेषण करने तथा इस द्वन्द्व को पांचवें द्वन्द्व के रूप में मानने की जरूरत व महत्व को समझाने की कोई जहमत नहीं उठाई है। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि विभिन्न प्रकार के भटकाओं, खासकर संशोधनवादी भटकाव से विश्व साम्यवादी आन्दोलन को बचाने के काम में इन विषयों का महत्व असीम है। हम सोचते हैं कि इस दायित्व को पूरा किये बगैर गुरुवाद के विरुद्ध कोई कारगर लड़ाई संचालित करना संभव नहीं है, क्योंकि हम मुख्य रूप से अन्धता के विरुद्ध लड़ाई करने के माध्यम से ही गुरुवाद के विरुद्ध लड़ सकते हैं। यदि आज विश्व साम्यवादी आन्दोलन के सामने मौजूद इन सवालों का सैद्धांतिक विश्लेषण नहीं किया गया और इन्हें हल नहीं किया गया तथा अगर नेताओं से लेकर आम कार्यकर्ताओं तक समूची पार्टी एवं आम लोगों को शिक्षित नहीं किया गया, तो अंधता पूरी तरह कायम रहेगी। कृपया, याद रखें कि अंधता सिर्फ अंधभक्ति में ही नहीं, बल्कि अंधविरोध में भी निहित होती है। हालांकि अंधभक्ति को ही आम तौर पर अंधता माना जाता है।

संविधान पर कुछ टिप्पणियां

अब, नौवीं कांग्रेस द्वारा पारित संविधान के बारे में मैं संक्षेप में कुछ कहना चाहता हूं। हम विभिन्न देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों को कभी-कभी अपने पार्टी संविधानों को बदलते हुए पाते हैं। पार्टी संविधान के बारे में हमारी समझदारी यह है कि यह एक देश-विशेष की एक विशेष स्थिति में कम्युनिस्ट पार्टी की अन्दरूनी समस्या,

आन्दोलन की स्थिति, कार्यकर्ताओं की चेतना और उनके आपसी संबंध के स्तर, संघर्ष की जटिलताओं और वैचारिक संघर्ष–इन सभी के मद्देनजर सर्वहारा जनवाद और केन्द्रीयता के विलय की समस्या का रूप ले रही है–उसके आधार पर पार्टी की गतिविधियों को संचालित करने का एक सांगठनिक दिशा निर्देश है। संक्षेप में, संविधान पार्टी की अन्दरूनी असलियत को प्रतिबिम्बित करता है। जब तक इस तरह सोच-विचार न किया जाये, एक संविधान ऊपर से थोपी गयी अच्छी-अच्छी बातों का चाहे लेनिन या अन्य किसी पार्टी के निरूपणों से यांत्रिक रूप से ली गयी बातों का पुलिन्दा बन जाता है–मगर इससे सचमुच में काम नहीं चलता। यही वजह है कि जब संविधान बदला जाता है, तो उस परिवर्तन के लिए पृष्ठभूमि व कारण की स्पष्ट रूप से व्याख्या की जानी चाहिए, अन्यथा इन परिवर्तनों को समझना ही कठिन हो जाता है। लेकिन नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट में ऐसी किसी चीज का जिक्र तक नहीं किया गया है।

जिस तरीके से लिन बियाओ को पार्टी में माओ त्से-तुंग का उत्तराधिकारी घोषित किया है उस तरीके पर आप की प्रतिकूल प्रतिक्रिया पर मैंने ध्यान दिया है हरेक कॉमरेड जानता है कि कम्युनिस्ट पार्टी में पार्टी नेतृत्व उत्तराधिकार के माध्यम से नहीं आता है। बहरहाल कोई पार्टी का नेता होने के योग्य है या नहीं, यह कम्युनिस्ट के रूप में उसकी योग्यता, चरित्र की दृढ़ता और उसने कहां तक अपने-आप को पार्टी हित के साथ एकाकार कर लिया है–इन सब पर निर्भर करता है। अतः यह समझना कठिन नहीं है कि 'उत्तराधिकारी' की अवधारणा गलत है और उसका मार्क्सवाद के साथ कोई संबंध नहीं है।

फिर भी मैं यह स्वीकार करता हूं कि इस संविधान ने संक्षेप में और स्पष्टता के साथ बहुत ही सुन्दर ढंग से संगठन के निर्देशक उसूलों को इस प्रकार रखा है कि जिसके तुल्य कम्युनिस्ट आन्दोलन की दूसरी पार्टियों के इतिहास में मुझे देखने को नहीं मिला। निस्संदेह यह प्रशंसनीय है।

अवश्य ही मैंने कुछ कमियां भी नोट की हैं। उदाहरणस्वरूप मेरी राय में जनवादी केन्द्रीयता का मुद्दा, जो एक कम्युनिस्ट पार्टी

की सांगठनिक मूल नीतियों (principles) का सारतत्व है, संविधान में सबसे पहले आना चाहिए, क्योंकि यही वह नींव है, जिस पर कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन टिका होता है। लेकिन यहां उसे अध्याय (3) के अनुच्छेद (5) में दर्ज किया गया है। मुझे इसमें कोई तुक नजर नहीं आती। इसके अलावा, जनवादी केन्द्रीयता की व्याख्या करते समय, कहा गया है ''यह एक ऐसी राजनीतिक स्थिति पैदा करने के लिए जरूरी है, जिसमें केन्द्रीयता व जनवाद दोनों हों।'' आदि, आदि। मैं इस अभिव्यक्ति को गलत मानता हूं। उनका अभिप्राय किस प्रकार के जनवाद से है? अति-जनवाद, औपचारिक जनवाद या उदारवादी जनवाद, जो सभी बुर्जुआ जनवाद के ही रूपान्तर हैं? या सर्वहारा जनवाद? यदि इस जनवाद के वर्ग-चरित्र का उल्लेख न किया जाय, तो यह और भी ज्यादा भ्रान्ति पैदा करता है। हम सभी जानते हैं कि जब लेनिन ने इसके बारे में कहा तो उन्होंने कहा था कि जनवादी केन्द्रीयता है–केन्द्रीयता के साथ सर्वहारा जनवाद का मिलन (fusion)। यह समझ नहीं पा रहा हूं कि इसके बावजूद एक ऐसी त्रुटिपूर्ण, अपर्याप्त अभिव्यक्ति कैसे आ गयी? यह कहा गया है कि एक ऐसे राजनीतिक परिवेश की सृष्टि की जायेगी ''जहां अनुशासन व स्वतंत्रता संकल्प की एकता तथा मन की सहजता एवं जीवंतता विद्यमान होंगे।'' यहां भी यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि उनका आशय किसकी आजादी और किससे? क्या यह दास-प्रभुओं के उत्पीड़न से दासों की स्वतंत्रता है? या यह सार्त्र के अस्तित्ववादी दर्शन में उल्लिखित स्वतंत्रता से है, जहां यह कहा गया है कि व्यक्ति स्वतंत्रता का जन्मजात अधिकारी है (individuals are condemned to freedom)।

बिना किसी स्पष्टीकरण के उन्होंने स्वतंत्रता व अनुशासन को संयोजित करने की बात कही है। यह तो कुछ भ्रान्तिजनक है। लेकिन मैं इस अभिव्यक्ति को पसंद करता हूं जिसमें उन्होंने कहा: ''संकल्प की एकता तथा मन की सहजता एवं जीवन्तता।'' अन्दरूनी पार्टी संघर्ष में एक ओर इच्छा या संकल्प की एकता तथा दूसरी ओर पार्टी के अन्दर एक ऐसा परिवेश होना अनिवार्य है, जहां सभी कार्यकर्ता खुले दिल से, सहज मन के साथ और बेहिचक संघर्ष में

भागीदारी कर सकें। इसका अर्थ यह है कि हर तरह के पूर्वाग्रह तथा व्यक्तिगत शत्रुता, डर की भावना, दुराव-छिपाव और संकीर्ण मानसिकता से मुक्त होकर ही कोई अन्दरूनी पार्टी संघर्ष में हिस्सा लेगा। ये बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू हैं, क्योंकि यदि पार्टी के अन्दरूनी जीवन में ऐसे खुले एवं स्वस्थ परिवेश का अभाव रहता है तो चाहे नेताओं में भले ही न हो मगर आम कार्यकर्ताओं में कानाफूसी की मनोभावना व कुप्रवृत्तियों के पैदा होने की संभावना बनी रहती है।*

30 अगस्त 1969 को दिया गया भाषण।
बंगला पुस्तिका के रूप में 5 अगस्त,
1981 को प्रकाशित।

* हमें खेद है कि इस भाषण का अंतिम भाग तकनीकी खराबी के कारण रिकार्ड नहीं किया जा सका।